नया पन्ना

कृष्णपालसिंह भदौरिया

नया पन्ना

कृष्णपाल सिंह भदौरिया

प्रकाशक

साहित्य सेतु अकादमी ट्रस्ट

अहमदाबाद

नया पन्ना

© लेखक

ISBN : 978-81-980943-6-0

मूल्य : 250

प्रथम संस्करण
चैत्र शुक्ल रामनवमी वि.स. 2082
6 अप्रैल, 2025

प्रकाशक
साहित्य सेतु अकादमी ट्रस्ट
अहमदाबाद

टाइपसेटींग
स्टाइलस ग्राफिक्स
अहमदाबाद–380001

मुद्रक
साहित्य सेतु अकादमी ट्रस्ट
A–202, क्रिश लक्जूरिया
वस्त्राल रोड, अहमदाबाद–382418
(मो.) 9427622862

समर्पण

ऐसे विद्वान, मनीषी, साहित्यकार जिनकी
विद्वता और साहित्यिकता से अभिभूत होकर
मैं भी इस क्षेत्र में आया ।
ऐसे आदरणीय
डॉ. महावीर सिंह चौहान
को सादर समर्पित ।

साम्प्रत समय से सीधा संवाद करता कविता संग्रह - नया पन्ना

- डॉ. धीरज वणकर

संस्कृत में कवि को 'प्रजापति' की उपमा दी गई है जो अपनी रुचि के मुताबिक नूतन सृष्टि की रचना करता है ।

अपारे काव्यसंसारे कविः एक प्रजापति ।
यूथास्मै रोचते विश्वं तथैव परिवर्तने ॥

कविता अपने मनोभावों को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम है । कविता गहरे दायित्वबोध की सार्थक अभिव्यक्ति है । समाज की विसंगतियों के विरुद्ध कविता आक्रोश व्यक्त करने के साथ ही मनुष्य में चेतना का संचार करती है । किसी भी कविता में जब लालित्य एवं श्रृंगार की रसवर्षा होती है तब वह अपने चरम बिन्दु तक पाठक को प्रभावित करती है । जैसा कि कहा गया है –

जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
भूषण बिनु न विराजई, कविता, वनिता मित्त ॥

वहीं प्रेमचंद साहित्य को 'जीवन की सच्ची आलोचना' मानते हैं । गुजरात के प्रतिष्ठित साहित्यकार कृष्णपाल सिंह भदौरिया ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है । आपकी लेखनी निरंतर चलती रहती है । आप एक निष्ठावान हिन्दी उपासक हैं । आपके अब तक **चाँदनी के नाम, पिछले प्रहर में (गीत संग्रह), तुलसी के राम, पुराण : भारतीय इतिहास और संस्कृति का विश्वकोश** आदि ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं । भदौरिया जी मूलतः कवि हैं । **नया पन्ना** कृष्णपाल सिंह जी का महत्वपूर्ण काव्य संग्रह है । इस संग्रह से गुजरते हुए मुझे लगा कि कवि की नज़र अपने इर्द-गिर्द के विविध विषयों पर गई और साम्प्रत समाज के यथार्थ को अपनी कलम के जरिए पाठकों के समक्ष रखा है । मानवीय संवेदना के साथ कवि ने निजी अनुभवों को बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत किया है ।

मौजूदा दौर में चारों ओर अशांति फैली है । गांधी के गुजरात में हिंसा बढ़ती जा रही है । कवि की चिंता लाजिमी है । संग्रह की पहली कविता की ये पंक्तियाँ हमें बहुत कुछ कह जाती हैं –

हिंसा, ज़हर
पिंजड़ों में नहीं
सड़कों पर घूमती है

'नया भारत' एवं 'विजय यात्रा' कविताएं वर्तमान के सच को बेबाकी से बयाँ करती हैं । राजनीतिक साजिश के तहत वादों वचन को भूल जाते हैं । 'विजय यात्रा' शीर्षक अत्यंत सटीक एवं समसामयिक है । प्रमाण के तौर पर देखिए –

मेरी विजय यात्रा में
पथ के किनारों पर
चिल्ला उठते हैं भीखारी
लहुलुहान हाथ-पाँव उठाकर –
मुझे कितने ही भाइयों? की चिंता है?
देश-परदेश की भी
पर सहयोग नहीं मिलता मुझे
विदुर का (गरीब है बेचारा)
और फिर समस्याएं, समस्याएं
(भूख, भाषा, बम, सीमा, कूर्सी)
युद्ध होता रहता है ।

समाज में मुखौटा धारण किए हुए लोगों को कवि ने कई कविताओं में बेनकाब किया है । कवि का दृष्टिकोण इतना व्यापक है कि वे विद्रूपताओं, विसंगतियों पर चिन्तन करते दिखाई दे रहे हैं । कवि एक ऐसे भारत के निर्माण की आशा करते हैं जिसमें वाकई मानवता की महक का प्रसार हो, इसी बात को इन पंक्तियों में उजागर किया गया है –

यह सारी दुनिया पीट रही थी
मानवता का ढोल
मैं एकाकी
स्वर्ग छोड़ अपना
आया इस गंदी बस्ती में
कई बार देखी थी
ढोल की पोल
कितनी बार बना बनाकर
बजाया इस बूढ़े ढोल को

– और आज वही मेरा मैं
भूल गया स्वत्व को

'नया युग' में ऐतिहासिक घटना दुष्यंत - शकुंतला के हवाले से आज की सच्चाई को उद्घाटित करते हुए कवि कहते हैं । आज के नये युग बोध में दुष्यंत एवं शकुंतला किसी को कष्ट नहीं देते –

आज का दुष्यंत
डरता नहीं कि वह
भूल जाएगा प्रियतमा को
क्योंकि वह राजा नहीं है ।

आज का आदमी आत्मकेंद्रित या स्वार्थी हो गया है । प्राणी मात्र की मंगल कामना भूल रहा है । सब अपनी-अपनी डफली बजा रहे हैं । बदलते समय को बखूबी उजागर करते हुए कवि लिखते हैं –

हम सब पी रहे हैं
अपना-अपना भूत और भविष्य
अचानक हमारे गले में
अटक जाता है
अनमेल वर्तमान का एक तीखा स्वाद
एक घूंट
और हम पीते रहते हैं
अवांछित, अकल्पित
अपने-अपने वर्तमान को

कवि भदौरिया जी मनुष्य जीवन की कई विडम्बनाओं, समस्याओं, दुखों, अपेक्षाओं को प्रस्तुत करते हैं जिसका हम सभी अपने जीवन में अनुभव करते हैं । कवि अपनी कविता की विषयवस्तु की खोज करते हुए प्रतीत नहीं होते क्योंकि उनकी कविताओं के विषय बहुत दूर से नहीं लिए गए हैं । वे जीवन के एकदम निकट से पकड़े गए हैं । अतः यह कहा जा सकता है कि उनकी कविता प्रतिभा एवं कला से युक्त है, निजी भाव बोध तथा अनुभूतियों से अधिक सम्पन्न है । उनकी कविता ईंट-ईंट जोड़कर खड़ी की गयी इमारत की तरह नहीं है बल्कि स्वयं भू प्रतीत होती है । अधिकार के लिए संघर्ष करते मनुष्य की व्यथा को बयान करती उनकी कविता 'अधिकार तीन' कविता की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

मैं ज्वालामुखी, कूदूँगा नहीं
तुम्हें जलाना होता तो

आँसुओं को बहने से रोक
झील न बनने देता
इसे मैं कोई नाम नहीं दूँगा

महात्मा गांधी सत्य के पुजारी और शांति के चाहक थे । बिना शस्त्र देश को आज़ादी दिलाने वाले गांधी की हत्या नाथूराम ने की थी । गांधी की मृत्यु के पूर्व के शब्द हे राम थे । 'राजघाट पर' कविता की एक बानगी देखिए –

मैं ने कहा
मैं नेता नहीं, अभिनेता नहीं
कवि हूँ, विचारक हूँ
सारे गुण की
चेतना का संवाहक हूँ
पत्थरों पर अब भी अंकित थे वे शब्द
'हे राम'
और मैं अनायास कहे जा रहा था
हाँ, मैं नाथूराम हूँ
मैं हूँ नाथूराम
मैं हूँ नाथूराम

'सड़क अब भी चल रही है' कविता हमें सोचने पर मजबूर करती है । कवि का करारा प्रहार देखिए –

और शाम को
हर घर का कोई न कोई आदमी
एक-दूसरे की आँख बचाकर
शराब घर जाता है
वस्तुत: इन सब
चलने वालों को छोड़कर
सड़क चली जाती है
जो अब भी चल रही है

कृष्णपाल सिंह जी कई दशकों से अहमदाबाद में रहते हैं फिर भी गाँव से जुड़े हुए हैं । गाँव अब बदल गया है । कवि अपनी माँ के न रहने का दु:ख व्यक्त करते हैं । कई वर्षों के बाद गाँव लौटे तो उन्होंने देखा –

यहाँ तो
गोबर की कोई गंध नहीं है

मेरी पशुशाला
ओह खाली पड़ी होगी
– ठेका खूब चल रहा है (शराब की दुकान का)
मैं ने भी
अपनी खादी की टोपी भर पी ली है
गाँव घर कुछ नहीं बदला है
सच नहीं बदला है
मैं – मैं – ?
हो सकता है, मैं नहीं हूँ

महानगर की असलियत का पर्दाफाश करते हुए कवि 'सूरज की रौशनी' कविता में लिखते हैं –

राजनगर की सड़कों पर दिन दहाड़े
सीता, रीटा बनकर अल्बर्ट की बाँहों में है
दो दो पैसों में बिक रही हैं
दमयंती और सावित्रियाँ

समग्रत: कहा जा सकता है कि नया पन्ना संग्रह की एक-एक कविता अपने आप में बड़ी महत्वपूर्ण एवं संदेश देने वाली है नया पन्ना सार्थक कविता है –

मैं कहता हूँ दोस्तों
ग़लत इबारत का भूल सुधार
हाशिये पर नहीं हो सकता
उसके लिए
नया पन्ना चाहिए

यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह एक श्रेष्ठ और स्तरीय काव्य संग्रह है । आज ऐसे काव्य संग्रह की हिन्दी साहित्य को अत्यंत आवश्यकता है । हिन्दी साहित्य में वर्तमान समय में यह संग्रह अपना स्थान बनाने में निश्चित सफल होगा । श्रेष्ठ पुस्तक के प्रकाशन पर बहुत बहुत साधुवाद ।

- डॉ. धीरज वणकर
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
जी. एल. एस. कॉलेज फॉर गर्ल्स, अहमदाबाद
(मानव संसाधन विकास मंत्रालय से पुरस्कृत लेखक)

मनोगत

परंपरा है कि रचनाओं में सबकुछ कह देने के बाद भी उनके प्रकाशन के समय रचनाकार को दो शब्द कहने पड़ते हैं ।

नया पन्ना में संग्रहीत रचनाओं के बारे में इतना कहना चाहूँगा कि ये रचनाएँ 1964 - 65 से लेकर लगभग सन् 2000 तक की मेरी विचार यात्रा का प्रतिबिम्ब हैं । वैसे तो संग्रह में समाविष्ट **नया पन्ना, उत्सव, हाँ मैं धर्म हूँ, मैं माँ और धोखेबाज़ लड़की, वृद्ध पिता, सूरज की बेचैनी, टूटे खिलौने, सही बात, मेरा घर मेरा गाँव** आदि वे रचनाएँ हैं जो मेरी काव्य यात्रा का परिचय देती ही हैं । फिर भी प्रत्येक रचना के पीछे की भाव दृष्टि अपना परिचय स्वयं देती हैं ।

इस श्रम साधना के पीछे के तीन परिबलों की बात कहना आवश्यक है । पहला है लाल बहादुर शास्त्री स्टेडियम (बापूनगर) की सीढ़ियों पर जुड़ने वाली विप्लवी गोष्ठी मेरा बड़ा प्रेरक बल रहा है । गोष्ठी में श्री रामकुमार यादव, श्री भगवान दास जैन, श्री घनश्याम मिश्र, श्री सुलतान अहमद, श्री शेषधर पांडेय, श्री श्यामपाल सिंह चौहान आदि मेरे मित्र छैनी और हथौड़ा लेकर इन रचनाओं को निर्ममता पूर्वक तराशते थे । शायद इसी का परिणाम है इनकी प्रौढ़ता ।

दूसरी बात मेरे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जुड़े होने से है । प्रायः इन रचनाओं को समाजवादी विचार की रचनाएँ माना जाता रहा है । मुझ पर यह आक्षेप आता था कि एक अति प्रतिक्रियावादी संगठन से जुड़े होने के बावजूद मैं ऐसी अभिव्यक्ति कैसे कर सकता हूँ । उन मित्रों से कहना चाहूँगा कि संघ का स्वयंसेवक समाज के अंतिम छोर पर बैठे व्यक्ति तक पहुँचता है और आत्मीयता स्थापित करता है । वहाँ बैठे व्यक्ति, समाज के आसपास उसे जो सत्य दिखता है वह उसीको शब्द देता है, अभिव्यक्त करता है । (किताबों और भाषणों से संघ समझ में नहीं आता) अंतिम छोर पर बैठे व्यक्ति की सच्चाई को यथावत अभिव्यक्त करना प्रतिक्रियावाद नहीं हो सकता ।

तीसरी बात, गुजरात से हिन्दी के दो आधार स्तम्भों का चला जाना । श्री विश्वनाथ शुक्ल और श्री रामदरश मिश्र यह दुर्घटना न होती तो गुजरात में हिन्दी साहित्य की दशा, दिशा और उपलब्धि कुछ और ही होती । हो सकता है यह मेरी व्यक्तिगत मान्यता हो पर 1960 से लगभग 35 वर्ष तक का हिन्दी जगत एक विस्तृत सहारा बना रहा ।

मेरे सभी सहयोगी मित्रों का आभार तो मानता ही हूँ । परन्तु संपूर्ण आभार का

अधिकारी कोई है तो वह है श्री विजय तिवारी, जिनके आग्रह और प्रयास से इनके प्रकाशन की सफल योजना बनी । अन्यथा यह सब डायरियों के पन्नों में पड़ा पड़ा पुराना होकर क्षतिग्रस्त हो जाता और अनकही कहानियों में एक और अध्याय जुड़ जाता ।

इति शुभम्

– कृष्णपाल सिंह भदौरिया
404, देव सिद्धि फेबुला, सी. जी. रोड,
होटल प्रेसिडेंट के पास, नवरंगपुरा, अहमदाबाद
मोबाइल – 9426028100

प्रकाशकीय

हिन्दी साहित्य और इसके अलावा भी कई पुस्तकों का प्रकाशन किया किन्तु हिन्दी काव्य संग्रह **नया पन्ना** इसका प्रकाशन करते हुए मैं अत्यंत प्रसन्नता और स्वयं को सौभाग्यशाली महसूस कर रहा हूँ । आदरणीय श्री कृष्णपाल सिंह भदौरिया अहमदाबाद के लब्धप्रतिष्ठित विद्यालय शेठ सी. एल. हिन्दी हाईस्कूल में आचार्य के पद पर सेवा देते रहे और यह मेरा सौभाग्य है कि मैं इनका शिष्य रहा । मेरी विद्यालयीन शिक्षा दीक्षा इसी विद्यालय में सम्पन्न हुई ।

विद्यालय के दिनों में भदौरिया जी की कविता, ग़ज़ल, गीत मैं सुनता रहा हूँ और अत्यंत प्रभावित भी रहा हूँ । एक लम्बे अरसे के बाद सर से मुलाकात हुई और उनकी काव्य यात्रा की जानकारी भी मिली । सर के श्री मुख से उनकी कविताओं का आनन्द लिया और जब उनकी डायरी देखी तो मैं दंग रह गया । सन् 1964 से इस डायरी में उन्होंने लिखा हुआ है । आज से साठ वर्ष पुरानी डायरी । एक-एक पृष्ठ अलग हो गया था । कागज़ पीले हो गये थे । सभी फट चुके थे । कागज यदि मोड़ो तो फट जाते थे । उस डायरी को लेकर इन सभी को पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का कार्य अत्यंत कष्टप्रद रहा । किन्तु इस कार्य को अत्यंत मनोयोग से प्रसन्नता से इसलिए करता रहा कि मैं गुरु ऋण से मुक्त हो सकूँ ।

भदौरिया जी की श्रेष्ठ और स्तरीय रचनाओं को पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का यह अवसर मेरे जीवन का सबसे सुखद और स्वर्णिम क्षण है । भदौरिया जी को पुस्तक प्रकाशन पर्व पर हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ देते हुए मैं स्वयं को गौरवान्वित महसूस कर रहा हूँ ।

नया पन्ना में संग्रहीत प्रत्येक रचना श्रेष्ठ और स्तरीय है । हिन्दी साहित्य जगत में इस पुस्तक का स्वागत होना ही चाहिए ।

–विजय तिवारी

अहमदाबाद

• अध्यक्ष एवं संस्थापक

• साहित्य सेतु परिषद (पंजीकृत)

• साहित्य सेतु अकादमी ट्रस्ट (पंजीकृत)

• vtlibrary.com विश्व का सर्वप्रथम वेब पुस्तकालय

• विश्व हिन्दी साहित्य संस्थान (यूट्यूब चैनल)

अनुक्रमणिका

1. हिंसा सड़कों पर घूमती है 1
2. नया महाभारत 2
3. विजय यात्रा 3
4. एक बिंदु : चार दृष्टि 4
5. गधा 5
6. चार रस्ते की चार सड़कें 6
7. दिग्भ्रम 7
8. आश्वासनों का खोखलापन 8
9. भूला हुआ स्वत्व 9
10. लोभ 10
11. रात ढलती है 11
12. फुटपाथ के पत्थर 12
13. पन्द्रह अगस्त : एक स्वप्न 13
14. शिखण्डी 15
15. उलझन 16
16. प्रतिज्ञा से प्रश्न (गणतंत्र दिवस) 17
17. तुम्हारी मुस्कान 18
18. चौराहे का बुझा बल्ब 19
19. बादल का टूकड़ा 20
20. वृद्ध पिता 21
21. चिमनियों का धुआँ 23
22. चाँदनी 24
23. प्रतिमा प्रतिस्थापन 25
24. कृष्ण जन्माष्टमी 26
25. पाँच महारथी 27
26. प्रकोप 28

27. चार क्षणिकाएं 29
28. उपलब्धियाँ 30
29. किसे पढ़ूँ 31
30. दो आधुनिक स्थितियाँ 32
31. नया युग बोध 33
32. दो महापुरुष : चित्र 34
33. वर्तमान का एक घूँट 35
34. गांधी, तुम और मैं 36
35. कितना बौना मैं 37
36. अभावों के बीच 38
37. अधिकार तीन 39
38. कम्प्यूटर 40
39. तालाब की सरकार 41
40. मेरी यात्रा और मानुष खाता दानव 42
41. हाँ, कभी मैंने किया था प्रेम 43
42. उत्सव 45
43. शिवराम सिंह भदौरिया के निधन पर 48
44. दो ध्रुवों के बीच 50
45. सूरज की बेचैनी 51
46. वह दिन 52
47. नया पन्ना 54
48. दोस्त से 56
49. कुशलक्षेम (यात्रा की) 58
50. प्यार 60
51. टूटे खिलौने 62
52. अलविदा 64
53. सही बात 66
54. बहुत बदशक्ल हो चुका है 68

55. खेल खेल का घर 70
56. और दूर 73
57. तुम 75
58. अच्छा होता 76
59. मैं 77
60. राधा : कृष्ण 79
61. राजघाट पर 80
62. आदमी और दर्पण 82
63. मैं कवि नहीं हूँ 84
64. तुम्हारा चित्र 85
65. होली 86
66. दिशाओं की तलाश में लक्ष्य 87
67. अनास्थाओं को जीना 89
68. किनारों से प्रतिबद्धता की असमर्थता 91
69. मैं, माँ और धोखेबाज़ लड़की 92
70. लोग मुझे ज़िन्दा रखना चाहते हैं 96
71. सुविधाजनक खाड़ी 99
72. दोस्त से 102
73. सड़क अब भी चल रही है 103
74. सड़क के बीच कब्र 105
75. सूरज की सीमा नहीं लौटती 106
76. आत्मा, अमरता और ईश्वर 108
77. सूरज की रौशनी 109
78. पिकासो की मौत पर 111
79. मेरा घर, मेरा गाँव 112
80. आज़ादी 115
81. रेत के बगूले 118
82. तहखाने में बंद ज्ञान-विज्ञान 119

83. साँस्कृतिक विरासत के पिरामिड 120
84. भूलों का सिलसिला 122
85. पितामह होना 124
86. काँच के घर 125
87. मौलिक अधिकार जिंदा है । 126
88. चश्मे 127
89. संदर्भ हीन 128
90. मैं धर्म हूँ 130
91. जंगल और समंदर 134
92. आखिर ग़लत क्या है? 135
93. आखिर कब तक 137
94. वार्ता का दर्शन 139
95. हम फिर खड़े होंगे 142

1. हिंसा सड़कों पर घूमती है

कांकरिया जलाशय पर
देख रहा था 'ज़ू'
एक बोधिपत्र 'हिंसक जानवरों की ओर'
शेर और चीते बंद थे।
पिंजड़ों में बेबस, बेचारे।
भूल गये हिंसा, वन्यता ।
आगे बढ़ा
ज़हरीले साँप रेंग रहे थे, सो रहे थे
काँच की पेटियों में।
ऐसा लगा
ज़हर बंद हो गया है
काँच की सीमा में।
एक जिज्ञासा
कहाँ है वन्यता, हिंसा, ज़हर?
और तब लगा
(मुझसा हिंसक कोई नहीं)
हिंसा, ज़हर
पिंजड़ों में नहीं
सड़कों पर घूमती है।

2. नया महाभारत

राज्य बाँटकर भी हम
हुए नहीं सुखी
खेल लिया मैं ने फिर
शकुनी से द्यूत ।
तब निर्वासित हो गयी द्रोपदी
अज्ञातवास को वनवास को।
भीष्म पितामह ने
नमक अदायगी की
कौरवों की
क्योंकि उन्होंने नमक खाया था
कौरवों की गुलामी का
और नमक की शपथ लेकर वह भूल गए
वादों को, वीरता को
(जो उनमें कभी नहीं थी)
युधिष्ठिर का धर्म रथ निकलेगा
हिमालय पर
(पर कुत्ता वहाँ भी होगा)
हम धर्मराज
(नकली हैं तो क्या)
अतिथि को अनाथ कब करते हैं?
स्वजन गलें तो गल जाएँ
बर्फ में।

3. विजय यात्रा

मेरी विजय यात्रा में
पथ के किनारों पर
चिल्ला उठते हैं भिखारी
लहुलुहान हाथ-पाँव उठाकर।
लोग विजय के नारों से
उन्हें रौंद देते हैं
मेरे भय से।
क्योंकि मुझे इनका भय है।
विजयोल्लास ही
मेरे कानों पर पड़ता है।
और मैं कहता हूँ
'मुझे कुछ ज्ञात नहीं'
फिर एक मंत्री को सौंप देता हूँ
वह काम
मुझे कितने ही भाइयों? की चिंता है?
देश-परदेश की भी
पर सहयोग नहीं मिलता मुझे
विदुर का (गरीब है बेचारा)
और फिर समस्याएं, समस्याएं
(भूख, भाषा, बम, सीमा, कुर्सी)
युद्ध होता रहता है।

4. एक बिंदु : चार दृष्टि

आसमान से ताकता है
गिद्ध और चीलों का झुंड
भूखे कुत्ते मुँह बाये
बाट देखते हैं नीम की छाँव में
झाड़ी में चमकती है
एक छोटी सी आँख
भेड़िए की
पेड़ की शाख पर तीर तान
बैठा है बहेलिया।
एक मांस पिण्ड
बेचारी गौरैया।

5. गधा

माथे पर पसीने की बूँदें झलकती हैं
पैरों की नसों में चरचराहट होती है
कंठ अवरुद्ध है
कर्तव्य बोध से।
पीठ पर लादकर सारी दुनिया का भार
पुट्ठों पर फिर भी पड़ती है मार
मूक मैं सबकुछ सह जाता हूँ।
मानवता के लिए, सामाजिकता के लिए
क्लबों में जाने का
कोई अवसर मुझे नहीं मिला
क्योंकि मैं ने कभी चाहा ही नहीं।
फ़ुरसत कहाँ है मुझे
इंटें ढोने से
जिनसे क्लब बनता है।
शिक्षा-दीक्षा से कोसों दूर
मैं ढोता हूँ सरस्वती मंदिरों को।
अतः सुख मिलता है
बाहर से तपकर
सभा सोसायटी मैं सबकुछ ढोता हूँ
पर मेरा
न कोई संगठन, न प्रमुख, न कोई नारा।
मात्र रेंक भर लेता हूँ
एकाकी क्षणों में।
शायद इसीलिए
लोग मुझे 'गधा' कहते हैं।

6. चार रस्ते की चार सड़कें

चार रस्ते की निरंतर फैलती जाती
चार सड़कों से आ-आकर
रोज सुबह
अनेक पक्षी मिल जाते
अनजाने पथिक कहीं
अनजाने बंध जाते।
इसी सड़क पर कहीं
बंध गया था मैं
दिनभर को
और सोच लिया था
अब तक सड़कें मिल गईं होंगी।
संध्या हम सबको ले आई
उसी चार रस्ते पर
चहचहाती चिड़ियाँ (शायद रोती भी हों)
बिखर गयीं
टूट गये बंधन
जो अनजाने बंध गए थे।
और मैं बिखर गया
इन्हीं चार सड़कों पर
जो कभी लौटती नहीं हैं।

7. दिग्भ्रम

उस दिन मैं बहुत ख़ुश था
जब नयी साईकिल खरीदी थी
निकल पड़ा एक सड़क पर, तेजी से।
बहुत कुछ जाने के बाद भी
गंतव्य का कोई चिह्न नहीं मिला।
शंका हुई शायद मार्ग भूल गया
और तब पूछा था दूसरों से
हर मील के पत्थर पर
कुछ विपरीत ही लिखा था
मेरे गंतव्य से
और स्वचेतना से
जब पीछे मुड़कर देखा
एक मील के पत्थर पर
तो पाया
मैं मार्ग भूला नहीं था
उसी सड़क पर जा रहा था
विपरीत दिशा में।
तब तक
मैं मीलों आगे जा चुका था।

8. आश्वासनों का खोखलापन

उज्जड़ बियाबान में
अनेक वृक्षों में से एक
बबूल का झाड़ गिर गया
न कोई आँधी थी, न तूफ़ान।
इसके गिरने से पहले
झूठे आश्वासनों की
सामाजिक परिणिति थी वह
जो हर बबूल का झाड़ देता है
सावन में।
पास ही
चरता रहा भैंसों का एक झुंड
निर्लिप्त भाव से
दुनियादारी को त्याग बैठे
योगियों सा।
पर बकरियों का झुंड
बिखर गया
जहाँ जिसको जगह मिली।
लोगों ने कहा
भयानक झंझा गिरा गयी इस वृक्ष को
पर वह वर्षों पुराना वृक्ष
अन्दर से
उतना ही खोखला हो गया है
जितना बाहर से विशाल।
स्वयं को धोखा देते देते
उसे गिरना ही था।
मैं कह रहा हूँ ताकि
अभी ऐसे ही अनेक वृक्षों के गिरने पर,
तुम्हें आश्चर्य न हो।

9. भूला हुआ स्वत्व

यह सारी दुनिया पीट रही थी
मानवता का ढोल
मैं एकाकी
स्वर्ग छोड़ अपना
आया इस गंदी बस्ती में।
कई बार देखी थी
ढोल की पोल
कितनी बार बना बनाकर
बजाया इस बूढ़े ढोल को।
पर भरी नहीं इसके अन्दर की पोल।
देवों का लालच खींच लाया
मुझ अमर को, मर्त्य बनाने।
पर इस मानवता की दुनिया में
सभी ओढ़े थे
'हरे राम, हरे राम' का खोल
मूँछ ऐंठते ही मिले
छोटे बड़े, बाल वृद्ध।
स्वर्ग छोड़ आया पूजा करने इनकी
जो कभी उसे पूजते थे
बना नहीं मानव जो
कुत्ता ही मात्र रहा
पूँछ हिलाने को
और आज
वही मेरा मैं
भूल गया स्वत्व को।

10. लोभ

अनेकों चक्र
लपेटने लगे
एक नगण्य, फटी सी चटाई को
बेचारी लिपटती गयी
नर्म रेशों वाला
कालीन बन जाने को।
संतोष लुप्त हो गया
किसी अनागत लोभ के लिए
चक्र चलते रहे
एक बार जिसमें उलझकर
निकलना असंभव है
तब
बेचारी फटी चटाई
चटाई भी नहीं रही।

11. रात ढलती है

दिन में होने वाली
अनेक बातों के लिए रात ढलती है।
वह हर बात को छाप देती है
नये दिन की
नयी सुबह के माथे पर
और वे बातें
नयी बातों को जन्म देती हैं।
जैसे
हर साँस चला करती है
जीने के लिए
और हर साँस पर
ज़िन्दगी मरा करती है
नये आयाम जन्म लेते हैं।
न मालूम किसने कहा था
रात पर्दा डालती है भले-बुरे पर
पर रात ही पैदा करती है
सभी भले बुरों को।
ठीक वैसे ही जैसे
श्वांस को ज़िन्दगी समझते हैं
तत्वज्ञानी
जबकि वह
क्षण-क्षण लूटा करती है
ज़िन्दगी को

12. फुटपाथ के पत्थर

वर्षों से
हमें बिछा दिया गया है इस स्थान पर।
लोगों को आते-जाते एक युग गुजर गया
हमें करवट लेने की भी फ़ुरसत नहीं मिली।
हमारा वक्ष घिस गया है हम उसी स्थिति में हैं।
सहसा हर क्षण आने वाला नया वाहन
चौंका देता है इन्हें बेचारे फिसलते हैं, गिर जाते हैं
सड़क पर चलने नहीं देते यमदूत।
उन्हीं में से कुछ लोग जो पहले फिसल चुके हैं
कहते हैं इन्हें चलना नहीं आता
जंगली हैं।
पर दोष उनका नहीं फिसलन हममें है
हम शक्तिहीन हो गये हैं पुराने वस्त्र जैसे
उन्हें धोखा दे जाती है हमारी चिकनाहट।
तुम में याद शक्ति है
बदल दो हमें
नये पत्थर लगा दो हमारे स्थान पर
या
पलट दो हमारे वक्ष को।
(जैसा तुम अक्सर किया करते हो)
खुरदरी पीठ कुछ दिन काम आ जाएगी
तब तक शायद
कोई हमें बदल दे।

13. पन्द्रह अगस्त : एक स्वप्न

1 - क्या कहा तुम अशोक हो ?

हाँ
मैं आया हूँ तुमसे कुछ कहने।
देखो वह अपना ध्वज
बाँध दिया तुमने
मेरा चक्र
आदर्शों और अकर्मण्यता से
मैं ने कब कहा था इसे आदर्श बनाने को?
इसे तो मात्र गतिशील रखना था।
अब यह मृत है।

2 - सहसा बाल रवि सा प्रकाश

कुछ कहने लगा
कहाँ है तुम्हारा त्याग
बन्धुत्व, समानता, वीरता
तुम सब कायर हो, नपुंसक हो।
केसरिया बाना पहने
विदूषक मात्र
जो तुम्हें शोभा नहीं देता।
एक डाली के लिए
झगड़नेवालों
तुम सब भेड़ बकरियाँ हो
त्याग दो, त्याग दो, यह केसरिया बाना।

3 - फटी सी धरती कुछ कहने लगी

कहाँ है तुम्हारी कल्पना की हरीतिमा
सुख, समृद्धियाँ
मैं अब प्रौढ़ हो गयी हूँ
फिर भी नंगी हूँ, भूखी, तृषित, अकालग्रस्त।
हरियाली मत पूजो कागजों में
श्मशान पूजो, ओ उपासको?

4 - और फिर रोने लगा

बापू का आदर्श
शुभ्रता पर दाग लगा दिया
गोड़से ने?
नहीं, तुमने जो कभी बुद्ध थे।
वह शुभ्रता कलंकिनी है।
और यह था बीस वर्ष बाद का
नैराश्य भरा एक उजड़ा चित्र।

14. शिखण्डी

एक गांधी की हत्या हुई
फिर से, एक नये परिवेश में
कभी तुमने भीष्म पितामह का घात किया
वीरता से?
पितामह की कमज़ोरी थी
शिखण्डी।
और तुम चला पाये बाली पर बाण
वृक्ष की ओट से।
बहुमत के मुँह से
वाह वाह
सुनने की आदत
यह बहुत पुरानी है।
महा पुरुष, युग पुरुष, मर्यादा पुरुषोत्तम
अन्धे का प्रसाद है।
जो बंटता है स्वजनों को
आज तक कई बार
हो चुकी है निर्वस्त्र द्रोपदी।
आज तक कयी बार
हो चुकी है सीता वनवासिनी
तुम्हारे तरकस के तीर
कितनी बार तने हैं?
वन देवों के पुत्रों ने कितनी बार
दर्प दमन किया है तुम्हारा
और तुम आज भी ढूँढते हो
शिखण्डी को?
देखो कहीं
तुम्हीं तो शिखण्डी नहीं हो

15. उलझन

आज सुबह से
बड़ी उलझन में हूँ
सोचता हूँ
खींच दूँ लकीर किस कोने में?
आजतक
अनेक अक्षरों को काटता रहा
यों ही स्याही से
अब
काफी कुछ तालमेल जोड़कर भी
बनता नहीं कुछ-कुछ नये अक्षर।
जो भी शेष बचा है
वह है मेरा ही नाम
उन्हें उलट फेरकर भी
मेरा ही कुछ बनता है
जिसे काटने की
हिम्मत नहीं है मुझमें
या
मेरे काटने में।

16. प्रतिज्ञा से प्रश्न (गणतंत्र दिवस)

हर नयी बरसात अनेकों को ले जाती है
रेल की पटरियों पर, पहियों के नीचे
मिथ्या विश्वासों के लाइसेंसों की
जला करती हैं हथेलियाँ
हर दफ्तर के द्वार पर।
कहीं आसमान में बजती हैं शहनाइयाँ
आतिशबाज बना देते हैं तिरंगे झण्डे
वन्देमातरम, जन गण मन बोल उठती है
सूरज की नई किरन
पर किसी महल की दीवाल से चिपटा हुआ
चिथड़ों में लिपटा हुआ फुटपाथ पर
लेटा रहा सर्दी की सारी रात पूछा कभी उससे
क्या गाता है उसका यह प्रभात।
मत गिनने वालो अंग्रेजी शासन के पक्ष में
जाते हैं कितने मत गिन लो
गोलियाँ खा खाकर लगा लिया है तुम्हें गले
आज के ही दिन कितनी उन्नति की है उन घावों ने ?
वह तट किसी आदर्श ने कर दिया दान
सोच ऐसा क्या किया तूने
कि लोग तुझे कहते हैं चोर, बेईमान?
और न कहें
बोल इसके लिए तूने क्या किया

17. तुम्हारी मुस्कान

मेरे पड़ोस के मकान में रहकर
आते-जाते आँखों में पड़कर
तुम चाहती हो
मैं निर्लिप्त बना रहता।
निगाहें चुराई तुम से मैं ने
फिर भी तुम्हें सूझा था मज़ाक
चुभा दिये नयन बाण मैं ने।
सामने आ जाती है रोज सुबह धूप
और मैं देखता हूँ, धूप में नहाया हुआ रूप।
मेरा ही संकोच
बनता है सत्ता का मोह
वह मुस्कान
आगे पीछे देखता हूँ, नयन मूँद
जिससे, समझती हो
मैं हूँ अनजान।
और तुम मुस्कुराया करती हो
मैं देखा करता हूँ।
चाहता हूँ अंजुलि भर लूँ इन ख़ुशियों की
डर है कोई देख लेगा।
और यह भीड़ भरा घर
कालिख पोत देगा, तुम्हारी निर्दोष मुस्कान पर।
पास की ख़ुशियाँ, यूँ ही देखी जाती हैं
आँख बंद करके
भगवान के दर्शन सी।

18. चौराहे का बुझा बल्ब

चार रस्ते पर
बीचोंबीच लगा हुआ बल्ब
कल सारी रात बुझा रहा।
वह यों कि
वह चाहता था कि
उसके अंधेरे में
एक एक्सीडेंट हो
और सुबह के अखबार छाप दें
चार रस्ते के लेम्पपोस्ट के पास
जिससे
उसका भी नाम आ जाए
मुख पृष्ठ के किसी कॉलम में जगह।
आज सुबह
मिस्त्री ने
उस फ्यूज हुए बल्ब के स्थान पर
नया लगा दिया।

19. बादल का टूकड़ा

आज सुबह
बादल का एक बड़ा सा
काला सा टूकड़ा
भाग रहा था पूरब को।
सूरज के शैशव की
प्रथम किरण
टकराकर टूट गई जिससे।
दबा छिपा बादल में
नन्हा सा, वस्त्र हीन सूरज
बढ़ता गया अपने ही पथ पर
असहायता का मंत्र मौन
गहरा होता गया
दोपहर की प्रतीक्षा में

20. वृद्ध पिता

मैं एक बूढ़ा बाप हूँ
पाँच होनहार बच्चों का
ज्येष्ठ है एक सरकारी अफसर
दूसरा मिनिस्टर, तीसरा ठेकेदार
चौथा व्यापारी, पाँचवा सोशल वर्कर।
अफसर और मिनिस्टर ने
गोपनीयता की शपथ ली है
अनेक हितों से
वे क्या कहते हैं, मुझे नहीं मालूम।
ठेकेदार साहब की कला
टेन्डर जीत लेने की
बहुत ही गोपनीय है।
बेचारे की पत्नी - मेरी बहू भी
डरती है इनसे।
व्यापार की शर्तें
मेरे चौथे बेटे से हार मानती हैं
कहाँ से सीख गया वह सब
(मैं तो जानता नहीं हूँ)
अब जानूं भी क्यों?
(कोशिश करूँ तो भी बताएगा नहीं)
बेचारे का कारोबार ठप्प हो जाएगा।
यह हैं पाँचवे
सोशियल वर्कर
वाद विवादों में सबसे आगे।
इनके पहुँचने से विवाद बढ़ते हैं
या घटते हैं

नहीं मालूम।
पर रोज सुबह
एक नये विवाद की सूचना मिला करती है।
मतलब यह कि
इन सबका कार्य
किसके लिए, कैसे होता है
मैं नहीं जानता।
क्योंकि
मैं एक वृद्ध पिता हूँ
अपने उसी पुराने घर में
रहकर
मुझे संतोष है कि
मैं बाप हूँ
पाँच होनहार बेटों का।

21. चिमनियों का धुआँ

भीड़ से घिरा मैं
अपने आप से बहुत ऊँचा उठ जाता हूँ।
पर मुझ से भी ऊपर मैं पाता हूँ चिमनियों का काला धुआँ
जो भभककर पड़ता है मेरे चेहरे पर और मैं धम से नीचे गिरता हूँ
आवारा भीड़ के अनेकों चिमनियों से निकलकर
काला धुआँ जमता जाता है मेरे ऊपर।
उसके कालेपन से
कोई उसे काले बाजार का कहें
इससे क्या धुआँ धुआँ ही तो है
उसे निकलना है, निकलेगा बिलकुल काला
परवशता का आश्रयदाता यदि बिक जाता है
किन्हीं काले हाथों तो दोष किसका?
पर यह मजबूरी है
कि हम इसे बंद नहीं कर सकते।
इसके बंद होते ही
हजारों समस्याएँ खड़ी हो जाती हैं
मुँह खोलकर।
अभी तक कितनी बार निगला है मुझे
इस पिशाच ने
अब मैं ज्यादा सह नहीं सकता।
इसलिए आज
आधी रोटी से
समझौता कर लिया।

22. चाँदनी

1 - एक दिन चाँदनी

झगड़ गयी तारों से
कहने लगी
क्यों टिमटिमाते हो?
नींद नहीं आती मुझे
तुम्हारी इस रौशनी से।
देखते नहीं हो
(इसीलिए)
चाँद को अन्धा कर दिया है।

2 - एक अमावस्या की

काली रात को
मैं ने सुना
चाँदनी उत्साहित कर रही थी तारों को
कहती थी -
संगठित हो जाओ
जगमगाओ
जागो
किसी भी चाँद से
तुम ज्यादा हो
यदि एक हो जाओ।

23. प्रतिमा प्रतिस्थापन

सुना है
बरसों बाद
एक जहाँपनाह की प्रतिमा को
उतार दिया
खण्ड खण्ड करके
उसके स्थान पर
एक नयी प्रतिमा लगा दी।
नये बादशाह की वह प्रतिमा
रो रही थी,
मूर्खों वर्षों बाद भी
मात्र प्रतिमा ही बदल पाये?
आधार तो अब भी वही है।

24. कृष्ण जन्माष्टमी

एक – भगवान का जन्म होता है
ठीक बारह बजे रात को
देवकी के पास कौन सी घड़ी थी?
खैर
ठीक बारह बजने से
एक मिनट पहले
आज की क्लाइमेट प्रूफ घड़ी
बन्द हो गई
तब भगवान का जन्म हुआ अंदाज़ से।
दो – भगवान की आरती निकली
सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान की
बिजली का पंखा
बन्द कर दिया गया
कहीं आरती बुझ न जाए

25. पाँच महारथी

पाँच महारथियों ने
फिर से दुरभिसंधी की है।
आज फिर अभिमन्यु घिर गया है
मर गया है।
अर्जुन की आँखें
देख रही हैं अशक्त, असहाय।
जयद्रथ वध की शक्ति नहीं
किसी दिव्यास्त्र में, देवास्त्र में।
वीर तुम प्रतिक्षा भी
नहीं कर सकते
पालन तो दूर
मरना तो क्या
मरने की बात भी नहीं कर सकते।
आज का यह अन्याय
कल तुम्हारे सिर नाचेगा
अभागे
तुम गूँगे हो आज
कल विश्व तुम्हारे लिए
गूँगा बन जाएगा।

26. प्रकोप

प्रकोप??
कितनी असमर्थता है मुझमें
उत्तर देने की
पेड़ पर लटकती लाश
खूँटे से बँधा होरी का बैल
और ऊपर पानी।
इन सबकी
वास्तविक अनुभूतियां क्या हैं
हम कैसे कहें?
बाढ़, तूफ़ान, अकाल
इन सबके बाद जागती है
मेरे भरे पेट की सहानुभूति।
बाढ़ क्या है?
बाढ़ में बढ़कर बहकर
देखने की शक्ति नहीं।
यह सब है
ढले हुए ज्वार का अवशिष्ट फेन
मृत्यु के बाद का
छोटा-सा संन्यास
जिसे देखकर हम रोते हैं।

27. चार क्षणिकाएं

एक –
मन के किसी कोने में
विरक्ति जागी है, विरक्ति के लिए।
व्यवस्था से ऊब गया मन
चाहता है
पृथ्वी स्थिर हो जाए
और वह
बिखर जाए असंख्य कणों में

दो –
पहाड़ी दर्रे से खिसकता हुआ
बर्फ़ का एक स्वच्छ, उजला टुकड़ा
चट्टानों से टकराकर
टूट गया, मैला हो गया
अब शांत है
नाले मटमैला पानी

तीन –
सेकेंड हैंड टेबल का
चौथाई इंच छोटा पाया
अचानक हिल जाता है
और
अनेक रेखाएं मिट जाती हैं।

चार –
सूरज के माथे पर उग आई शाम
कहती है
आज का चाँद पसीने से तर होगा।
बेहतर है हम अभी से
अंधेरा ओढ़ने लगें।

28. उपलब्धियाँ

एक –
मानव को बनानी थी नाव
पर वह बना बैठा आधुनिक पनडुब्बी
अन्वेषक का दम्भ लेकर
वह अंधे अनंत महासागर में
आधुनिक आवरण में
हर क्षण नीचे और नीचे जा रहा है
दो –
आकाश में भी उड़ता है वह,
पृथ्वी की परिधि में,
दूसरे देशों का अन्त: ज्ञान प्राप्त करने को
बम गिराने को
पृथ्वी से चाँद तक जायेगा भी तो
नियंत्रित यंत्रमानव द्वारा यंत्रमानव सा बेचारा।
तीन –
हीरोशिमा की धरती पर
चमकती धातु का एक टुकड़ा
कह रहा था मुझे मत छुओ
मैं यूरेनियम हूँ मुझमें अब भी
अनेक एटम ज़िंदा हैं
अमग्न
चार –
आश्चर्य हुआ,
मनुष्य
इन सब उपलब्धियों के बाद भी
तू ज़िंदा है

29. किसे पढ़ूँ

शाश्वत मौन का एक शब्द
ज्यादा है दुनियाँ से
मेरे अन्त: स्थित वाचाल मौन को।
मेरे इस द्वंद को
तुम पढ़ती हो या नहीं
पर मुझे लगता है
मैं कह कहकर भी
एक शब्द नहीं कह पाऊंगा
एक शब्द पाने के लिए।
पूछ लूँ
क्यों न तुम्हीं से
कॉलेज की बेंचों पर
मैं किसे पढ़ूँ?
तुम्हें या शिक्षक को?

30. दो आधुनिक स्थितियाँ

सारी दुनिया का ज्ञान
आडम्बर है, थोथा है, बुद्धिहीन।
जला दो इन पोथियों को
जो कहती हैं
समय देखो, व्यक्ति देखो।
सब झूठ है।
आज का व्यक्ति, आज का समय,
देखोगे तो
ज़िंदा रहते मर जाओगे।
जीना है तो
भले आँखें बन्द रखो–
समय को, व्यक्ति को, इनकी छाया
हवा को भी
सुँघा करो,
और सूँघ सूँघ कर ज़िंदा रहो
भले व्यक्ति मर जाए।
गली से जाते हुए देखा मैंने
भरत का वंशज
जबड़े खोले हुए घूम रहा है।
कुत्ते सा दाँत निकाले ।
युग का बोध बदल गया है।

31. नया युग बोध

नये युग बोध में
दुष्यंत या शकुंतला
किसी कण्व को कष्ट नहीं देंगे
शहर के अनेक उद्यान
गन्धर्व विवाह के लिए प्रस्तुत हैं।
दुर्वासा का श्राप
फलीभूत नहीं होगा।
आँखों की पहचान बहुत पुरानी है,
दिल को दिल पहचान लेता है
जन्म जन्मांतर के बाद भी।
दुष्यंत की अंगूठी खो भी जाए
क्या फर्क पड़ता है?
ओंठों पर चुम्बन का निशान
धुलेगा नहीं पानी से
शायद पुनर्जन्म में भी नहीं।
आज का दुष्यंत
डरता नहीं कि वह
भूल जाएगा प्रियतमा को
क्योंकि वह राजा नहीं है।

32. दो महापुरुष : चित्र

मेरे कमरे की दीवाल पर
आमने-सामने टंगे दो चित्र
कैनेडी और गांधी।
गौर से देखा दोनों पर
धब्बे थे डी. डी. टी. के
स्प्रेयर की नली नहीं जानती थी
ये महापुरुषों के चित्र हैं...।
लगा वे धब्बे धीरे-धीरे
फैलकर हो रहे हैं मटमैले
उनसे मिलते जा रहे हैं।
अनेक धब्बे रक्त के।
और
वे चित्र
होते जा रहे हैं अस्पष्ट।

33. वर्तमान का एक घूँट

हम सब पी रहे हैं
अपना-अपना भूत और भविष्य।
अचानक हमारे गले में
अटक जाता है
अनमेल वर्तमान का एक तीखा स्वाद
एक घूँट।
उसी में भूत बह जाता है
भविष्य
पीढ़ियों आगे चला जाता है
और हम पीते रहते हैं,
अवांछित, अकल्पित
अपने-अपने वर्तमान को।

34. गांधी, तुम और मैं

गांधी तुमने भूल की थी
केटल लिखने में।
काश मैं वह भूल भी नहीं कर पाता।
सुना है
तुम डरा करते थे भूतों से
बचपन में;
मेरे अस्तित्व का सूत्रपात ही
भूतों से हुआ है।
सत्य हरिश्चन्द्र पढ़ा था, देखा था तुमने।
मैं अपने असत्य का सत्य
पाता हूँ अपने चारों ओर।
कमर में घड़ी, हाथ में छड़ी
खुली पीठ, यह था तुम्हारा सुख
कई आवरणों में ढकी मेरी पीठ में
मेरे ही सूरज की चुभती हैं किरणें
हमारी आस्थाओं के संगीन
हर दिन, घाव पर घाव कर देते हैं
तुम्हीं कहो गांधी
आज़ाद होकर वयस्क हुआ मैं
अगांधी
गांधी कैसे बन सकता हूँ

35. कितना बौना मैं

चिमनियों का काला मुँह
सतखण्डे टावर पर लगी घड़ी
यायावर बिन्दुहीन बादल
अपनी ही हरीतिमा का
मर्सिया गाती हुई
विशाल वृक्षों की चोटियाँ
सब कितने विशाल हैं।
सब
अपना-अपना विशाल दुख जीते हैं।
मैं
आँख उठाकर इन्हें देखता हूँ
तो
माथे से मान सरककर गिर जाता है
अपने इस छोटे से संत्रास को लिए-लिए
इन सबके बीच
मैं कितना बौना लगता हूँ

36. अभावों के बीच

इस खेत की मिट्टी में
अतृप्तियों की नमी है।
मिट्टी के ढेलों पर
छिड़का गया है
भूख का उर्वरक।
युगों से जोता जा रहा यह खेत
अब बोने योग्य हुआ तो
इसके कोने-कोने में
बो दिये गये हैं, अभावों के बीज।
वे उगेंगे
उनकी पैदावार होगी
नये अभाव, नयी समस्याएँ।
उनपर
फल लगेंगे
हमारी अनन्त यातनाओं के।

37. अधिकार तीन

1. कुछ माँगा नहीं जाता

किस्मत वालों को अपने आप मिल जाता है
समय भी और वह भाव भी
जिसे लोग प्रेम कहते हैं।
क्षमा करो, अधिकार बिना
पूजा भी नहीं माँगूगा।
और अब चूप हूँ कि -
अपनी मौत का गीत गाने वाले
साथ नहीं खोजा करते।

2. मेरी आँखों का लावा

मस्तिष्क की आग की नदी
विस्फोट करके बाहर नहीं निकलेगी
उन्हें एक अन्त: प्रवाह मिल गया है।
घबड़ाओ मत
मेरे किनारों से गुजरते
तुम्हारे फूल पत्ते कुम्हलायेंगे नहीं।
क्योंकि
मैं ज्वालामुखी, कूदूँगा नहीं
तुम्हें जलाना होता तो
आँसुओं को बहने से रोक
झील न बनने देता।
इसे मैं कोई नाम नहीं दूँगा
जिसे पहचान कर
लोग उसे स्मारक बनाने की भूल न करें।

38. कम्प्यूटर

यह एक ऑल परपज कम्प्यूटर है
बिना किसी स्विच के बदले
स्वत: सबकुछ कर डालता है।
बच्चों को जन्म देना
अस्पताल में इलाज
और मौत की घोषणा।
दफ़्तर की फाईलें
नेता या अफसर का घर
सप्ताह में कम से कम एक बार
भगवान? के दरबार।
दिन भर यह
शीत युद्ध, साक्षात्कार या
विश्वशांति का भूगोल नापता है;
और शाम को
अपने नापे भूगोल को
इतिहास बना देता है
क्योंकि
यह एक ऑल परपज कम्प्यूटर है।

39. तालाब की सरकार

देश देश में एक होती है सरकार
जनता करती है जय-जयकार
कहीं वोट से, कहीं चोट से सरकार बनती है
लोग उड़ाते हैं खिल्ली दिल्ली से दौलताबाद
दौलताबाद से दिल्ली
कभी राजधानी, कभी राजरानी बदलती है।
इस तालाब की भी अपनी सरकार है।
जहाँ का प्रधानमंत्री चुना जाता है वोटों से
तौलता है अपने आपको नोटों से
कहते हैं बड़ा विचित्र होता है राजहठ,
इसीलिए हर राजा के नाम
बन जाता है एक मठ तालाब की पार पर।
राम राज्य, प्रजातांत्रिक, समाजवाद
अलग-अलग नाम पर तालाब को नहीं किसी से काम
तालाब के अपने भी कुछ सपने हैं
पर उसे
तालाब से कुछ और नहीं होना है
यहाँ की बस्ती में पेड़ हैं या भेड़ हैं
और वे ही तालाब के अपने हैं ।
कोई कहता नहीं इसीलिए
सरकारी आँकड़ों में कोई कुछ सहता नहीं।
क्योंकि सरकार के पास लाठी है, गोली है
या आँसू गैस है
और जनता
भोली है, भैंस है।

40. मेरी यात्रा और मानुष खाता दानव

मेरी यात्रा में
दूरस्थ एक पहाड़ी दिखती है
और मैं हर बार चढ़ जाता हूँ उसपर
स्वप्न में।
कल पहली बार दुस्साहस किया
उसपर सचमुच चढ़ने का।
चक्करदार पगडंडी पर
दूर से दिखने वाली हरीतिमा
एक विशाल चीड़ वन है
कोई वृक्ष आकर्षित नहीं करता।
शाखाओं पर लटके कंकाल
जैसे हर वृक्ष
किसी इतिहास यात्रा का मोड़ हो
चट्टानी कठोरता में,पिघले पाँव
दादी की कहानी के दानव की याद
जो मानुष खाना था
और चलने से चट्टान पिघल जाती थी।
चीड़ वन के वृक्ष खिलखिलाए
मुझे आगे भी एक खाली पेड़ दिखने लगा
मैं अनायास ही रटने लगा
दाने मामा राम-राम, दाने मामा राम-राम
और मैं जिस वृक्ष के भी पास गया
उसे पसीने से तर पाया।

41. हाँ, कभी मैंने किया था प्रेम

ढलती दोपहर में
सूनी पड़ी खाट पर बैठे
आज फिर बोल गया कौआ।
न जाने कौन उस परदेश में
कह गया था यह बात
सूनी पड़ी है घर की अंधेरी रात।
किन्तु
गोबर लिपी दीवाल पर
अब भी बने हैं, उँगलियों के चिन्ह
तुम्हारे हाथ जन्मी घिनौची पर,
अब भी
वैसे ही पड़े हैं, बन्द मुँह मटके।
दीवट से उठ रही है
बीते भूत सी
उस दिये की राख।
चौखट से बँधी है
हाथ से खोली गई राखी
और उस कौन में,
उन्हीं हाथों से लिखी चावल से
बनी है प्रेम करवाचौथ।
हाँ कभी मैं ने किया था प्रेम
प्रेम
देहली पर थकी
हर रोज की बीती प्रतीक्षा से

प्रेम
थाली में सिराये दूध की
निर्बंध ममता से।
प्रेम
सावन की बनैली घास
बीछी, साँप, काँटे
लाँघ आने के लिए उत्सुक
बने दो लाल धागों से।
प्रेम
आँगन पार के उजले बबूलों से
कछारों पर उगे नंगे करीलों से
दूर पूरब में उठे बेनाम टीले से
कि जिस पर बैठ
अनेकों बार देखा था
कछारों तक उतरती अकेली एक पगडंडी को।
प्रेम
नदी की धार एवं किनारों पर बिछे
चिकने बेतरतीब पत्थरों से -
कि जिन पर पीट कर
पानी की द्रवता व पत्थर की कठिनता से
अब भी
अनेकों वस्त्र उजले हो रहे हैं।

42. उत्सव

हाँ ! वह एक उत्सव ही था
जिसकी साल गिरह
आज भी मनाई जाती है।
उसी दिन
हमें दे दिया गया था
रौशनी का एक टुकड़ा
हमें दे दिये गये थे अपने-अपने मोर्चे
हमारे हाथों में मशालें थमा दी गई थी
हमारी पीठों पर बाँध दी थी
आदर्शों की पोटलियाँ
और उड़ा दिया गया था आकाश में
बिना यह बताये कि
रौशनी का मूल कहाँ है?
हमारे मोर्चे किसके खिलाफ हैं?
हमारी मशालों को तेल कौन देगा?
आकाश में हमारी दिशा क्या होगी?
उसी दिन औद्योगीकरण, हरित क्रांति
समता, स्वतंत्रता, न्याय
प्रजातंत्र, समाजवाद के नाम पर
लटका दिए गए थे हमारे गलों में।
हमसे कहा गया था तुम आज़ाद हो
और – और –
हम दुनिया का सबसे बड़ा प्रजातंत्र हैं
हमसे यह नहीं कहा गया था कि
हमारी रौशनी छीनने वाले अंधेरे
मशालें गुल करने वाली आँधियाँ

और हमारे आदर्श छीनने वाले
भेड़ियों के खिलाफ लड़ने को
हमें बंदूकें कौन देगा?
जिन एक दो के हाथों में बंदूकें थीं
उन्हें आज़ादी, प्रजातंत्र और आवाम का
दुश्मन करार देकर
हमसे उनकी हत्या करवा दी गई ।
हमारी कुदालें चलती रहीं
चट्टानों के नीचे का सोना
संगीनों के पहरे में जमा होता रहा ।
हमारे खेतों की हरियाली
अंधेरी, अज्ञात गोदामों में
जमा होती रही ।
हम अपनी फेक्टरियों में बनाते रहे
एयरकंडीशनर, रेफ्रिजरेटर,
टेलीविजन और सौंदर्य प्रसाधन ।
राष्ट्रीय अजायबघर के नाम
हमसे छीन लिया गया हमारा संस्कार
बतौर सुरक्षा निधि
हमारे पसीने की अस्सी प्रतिशत फीसदी बूँदें
हमसे छीन ली गई ।
और हर वर्ष उत्सव की साल गिरह पर
हमें याद दिलाये जाते हैं
बलिदान, त्याग और श्रम ।
उत्सव मनाया जाता रहा हम बढ़ते रहे
हमारे आगे एक जंगल था पीछे एक खाई
चारों ओर भेड़ियों का समूह ।
हमें झंड़े थमाने वाले नदी किनारे की अनुकूलता में

आश्रम बनाकर, गायब हो चुके थे
हमारे हाथों में सिर्फ झंड़े रह गए थे।
आज हमने इस उत्सव की रस्म अदायगी से
इन्कार कर दिया
तो तुम्हारी तोपों का मुँह हमारी ओर
मोड़ दिया गया।
पर दोस्तो हमें अब और क्या छिन जाने का भय है?
हम किसके लिए उत्सव मनाते हैं
याद रखो कि उत्सव नारेबाजियों से नहीं आता
उत्सव प्रचारों से नहीं आता,
उत्सव की नींद आश्वासनों से नहीं भरती
उत्सव मुगल दरबार की
मेहरबानी इनायत नहीं है।
जब हमारे झंड़े बंदूक बन जायेंगे
हमारे हाथ संगीनों की नोकें
और पत्थर तोड़ने वाला हथौड़ा
हमारा उत्सव छीनने वाले का
सिर तोड़ने में समर्थ हो जाएगा
उस दिन – सिर्फ उस दिन
आने वाली पीढ़ी को
हम विरासत में उत्सव दे सकेंगे।

43. शिवराम सिंह भदौरिया के निधन पर

वह पन्द्रह अगस्त का दिन था
जिस दिन मेरी मौत हुई थी
और यह पंद्रह मार्च
जब तुम चले गये।
तुम्हीं थे न
जिसने मुझसे कहा था –
भाई, मौत से डरकर भागा नहीं करते
मैदान छोड़कर भाग जाना अपराध है।
भाई
व्यवस्था के परिबल
ठीक वैसे ही बने हैं
नकाबपोशों की जनसंख्या
बढ़ती जा रही है।
रोटी और ख़ून के भावों में
बॉयल का विलोमानुपात भी
झूठा हो रहा है
जरूरत बंटे कीमत में
न जाने कितने घात जुड़ गए हैं।
जिस नाटक के
तुम समझदार विश्लेषक थे
वह गली नुक्कड़
सरेआम खेला जा रहा है।
तुम्हें जिस नाटक का नायक बनना था
तुम खलनायक बना दिए गए
तुम हँसते रहे
लेकिन

पर्दे के पीछे के सूत्रधारों की समझ तुम्हें थी।
उत्सव धर्मी चाटुकारिता की असलियत को
तुमने अपनी मुस्कानों में
रेखांकित किया था
भाई
तुम्हीं ने समझाया था न
नासमझी में सिर फोड़ लेना
कोई माने नहीं रखता।
पहाड़ तोड़ने के लिए
बारूद पैदा करनी होती है
डायनामाइट बनाना होता है।
गुमराह करने वालों की पहचान
आज की जरूरत है
और तुम चले गये।
भाई
अब कभी भी, कहीं भी
सही पहचान करने वालों की
जरूरत महसूस होगी
मैं तुम्हें कहाँ खोजूँगा ?

44. दो ध्रुवों के बीच

अपने कमरे की
ड्राइंगरुम समझी जाने वाली मेज पर बैठ
जब मैं तुम्हारी आँखों के संदेश की
भाषा पढ़ा करता हूँ तो सामने फुटपाथ पर
नई पीढ़ी मलोत्सर्जन कर रही होती है।
मैं अपनी तूलिका के अनुकूल
रंगों का चुनाव कर रहा होता हूँ तो
मेरी कैमरा आँख
आखिरी तारीखों का भूगोल पढ़ा करती है।
और जब मैं आकाशीय विशालता में उड़ान भर रहा होता हूँ
तो मेरे पाँव
महासागरीय दल-दल में फँसे होते हैं।
मैं तुम्हारे बाप की मुद्रा से भयभीत होता हूँ
तो दफ़्तर का साहब आ गया होता है
या पतिव्रता धर्मपत्नी पूछ रही होती है
तुम्हारा यानी नयी प्रेमिका का नाम ।
तुम्हारे पहले प्रेम पत्र की
बीच की किसी लाइन पर
उभर आती है सूखाग्रस्त क्षेत्र से आई
बाप की चिट्ठी मैं दो ध्रुवों की
चुम्बकीय एक्स्ट्रीमिटी का
बिन्दु हूँ
शून्य।

45. सूरज की बेचैनी

यह ठीक है कि तुम्हारे जन्म का
संपूर्ण वैज्ञानिक विश्लेषण आजतक संभव नहीं हुआ ।
यह भी ठीक है कि अन्तर्दहन, विस्फोट
तुम्हारे होने की प्रथम शर्त है
महासागर की पहचान हीन निद्रा में तुम्हारी ही ताप किरन
उमस पैदा करती है ।
भूगर्भ की आग पैदा करने वाला पिण्ड
तुम्हारे परिवार का ही एक सदस्य है
जो तुमसे छिटककर वातावरण से अनुकूलित होता रहा है ।
इन सबकी संगठित ऊष्मा प्रसूत
बादलों की इयत्ता पर इतना आक्रोश क्यों?
तुमने कोई महासागर तो उछाला नहीं था
कि आज भाप की बदहवासी पर बेचैन हो?
कुछ बादल ऐसे भी होते हैं
जो उर्वरा भूमि पर नहीं
रेगिस्तान में बरसा करते हैं ।
ओ मेरे स्वविप्लवी सूरज
छूटे आकाश और टूटते क्षितिजों का
हिसाब नहीं माँगा करते
क्योंकि तुम्हारी यात्रा का आयाम
नया होता है
तुम्हारी हर परिक्रमा के
अक्षांश बदले होते हैं।

46. वह दिन

ओ मेरे बूढ़े जमींदार बाप
काश तुम भी मेरी तरह
कलुआ, रेवतिया या नथुआ के साथ
एक प्याले में से चाय पी सकते।
तुम्हें मेरा बाप होने का अफसोस न होता ।
मैं देखता हूँ अपनी बूढ़ी आँखों में
अपने बड़े होने के अहसास के साथ सुबह से शाम तक
अनेकों बार, तुम्हें मरते हुए ।
मैं देखता हूँ कि तुम्हारे ख़ून से जन्मी शरबतो
मेरी बाँहों में बँध जाती है तो
तुम्हारी सामाजिक रिश्तों की समझ
अंधेरे के रिश्तों को उजागर कर देती है
और तुम्हारे सिर पर लाद देती है,
आत्महत्या का बोध ।
मैं देखता हूँ कि तुम्हारी रैयत की चिलम पर
तुम्हारा अपना बेटा धुँआ करता है
तुम्हारी लोहिया दीवालें
तो तुम पसीने से तर हो जाते हो।
मुझे तुम्हारा बेटा होने का
कोई अफसोस नहीं ।
नफ़रत का पहला पाठ मुझे तुमने पढ़ाया था
जिस दिन तुमने मुझे उस अंधे भगवान के द्वारे
मत्था टेकने को कहा था
जिसका नाम लेकर तुमने अपने हर पाप को
धर्म बना दिया था ।
नफ़रत का पाठ मुझे उस पण्डित ने पढ़ाया था

जिसने पूजा मंदिर में मेरी सहपाठिनी बारह वर्षीया
अछूता पर बलात्कार किया था ।
देखो यह जमात तुम्हारे खेतों की हरियाली की ओर
बढ़ रही है जिन पर सिर्फ इस जमात का अधिकार है।
तुमने बंदूकें तान ली हैं
लेकिन तुम्हारी गोलियों में घुन लग जाएगा
क्योंकि
तुम्हारी पहली गोली झेलने वाला पहला सीना
तुम्हारा अपना बेटा होगा ।
चिंता मत करो, मेरे जनक
अभी तो
तुम्हारी रक्षा में खड़ी फ़ौज के पास
काफी गोलियां हैं।
पर जिस दिन ये गोलियां भी महसूस करेंगी कि
जिस सीने को उन्होंने छलनी किया है
वह उनका अपना सीना था
उस दिन यह फौज हमारे साथ होगी ।
ओ मेरे बूढ़े बाप
तुम वह दिन
अभी से देख पाते
जैसे मैं देख रहा हूँ।

47. नया पन्ना

जब पूरे पन्ने की इबारत
ग़लत हो
तो हाशिए पर भूल सुधार
नहीं किया जा सकता।
संपूर्ण इबारत ही
फिर से लिखनी होगी
नये पन्ने पर।
दो दूने चार के अलावा
और भी बहुत से गणित हैं
घातों के
जो तुम्हें नहीं पढ़ाये जाते।
त्रिभुज के तीनों कोणों का योग
दो समकोण
सिर्फ तुम्हारे लिए है।
त्रिभुज के अन्तर्गत
और भी अनेक
बहुभुज बना लिए जाते हैं
जिनके कोणों का योग
तुम्हें कभी मालूम नहीं होगा
तुम्हारी इकाइयों में वृद्धि
सिर्फ 'हर' में होती है।
अंश किन्हीं और हाथों नियंत्रित
कान्स्टेन्ट हैं।
इस तरह तुम्हारा हर गुणा
भाग बन जाता है।
और हर जोड़ सिर्फ बाकी।
तुम्हारी शिक्षा का इतिहास

ग़लत तारीखों की लिस्ट है
जिसमें
राजाओं का जन्म है, मृत्यु है
और वे लड़ाइयां हैं
जिनमें लड़ते तुम थे
जीतता कोई राजा था।
राजा हारे या जीते
हार दोनों ओर
तुम्हारी ही होती थी
क्योंकि
तुम अपने लिए कभी नहीं लड़े।
इस तरह
हर युग में
सिर्फ राजा होते रहे
जिनके लिए तुम लड़ते रहे।
इतिहास के किसी काल खंड पर
तुम्हें अंकित नहीं होने दिया गया।
तुम
जो स्वयं इतिहास निर्माता थे
तुम्हारी कॉपियों पर
लिखा दिए गए
उन गलत काल खण्डों को
हाशिये पर कैसे सुधारूँ
इसीलिए
मैं कहता हूँ दोस्तो
ग़लत इबारत का भूल सुधार
हाशिये पर नहीं हो सकता
उसके लिए
नया पन्ना चाहिए।

48. दोस्त से

(उस एक दोस्त को जिसने मुझे ज़िन्दा होने का अहसास दिलाया वह एक दोस्त जो कभी-कभी ज़िन्दगी भर नहीं मिलता)

रेगिस्तानी प्यास को शीतल जलधारा का मिलना
लहुलुहान काँटों के बीच किसी फूल का खिलना
ज़िन्दगी के श्मशान में जैसे कोई छेड़ दे पावस गीत
कुछ ऐसा ही था मीत
तुम्हारे विश्वास का मेरे दर्द को पहचानना ।
सच तो यह है कि इतने अपनेपन से
मुझे किसी ने नहीं पुकारा था।
वह एक शब्द बदमाश न जाने कितनी अंधेरी गुफाओं के
द्वार खोल गया।
उन गुफाओं में ढेर सारे चित्र हैं
मुर्दा सरायों के मेले की पहचानहीन
भीड़ वाली दोस्ती के सामाजिक मजबूरी में अपने कहे जानेवाले
अजनबी रिश्तों के उस धर्म के
जो हमें फौलादी सीखचों में बंद करता रहा,
उस भगवान के जो अपनी अर्थहीनता और
पत्थरीय अहसास में कभी झूठा साबित नहीं हुआ ।
मेरे अनुभव का फ्रेम बार-बार चरमरा कर टूटा है।
हर बार एक आरोपित आकार
मुझे बर्दास्त करना पड़ा है ।
अपने इस न होने को झेलते हुए
कई बार मैं फिर जन्मा हूँ भ्रम में
तुम्हारी वर्ग हीन पहचान में अपना सही चित्र देखकर
चकित रह गया हूँ, साथी।
मेरे विश्वासों की दुनिया के होने का सुख

जंगलों से जूही की परिचित गंध का गुजरना
शहनाई की गूँज
उस प्रथम दिन जब तुमने – सिर्फ तुमने
मुझे मेरे स्वयं के ज़िन्दा होने का
विश्वास दिया था।
सहानुभूति, दया और करुणा का प्रदर्शन
जो महज ढोंग है और जिससे मुझे नफ़रत है
को पारकर जिस दिन तुमने मेरी सही जरूरत पहचानी
जिस दिन अपनी सहधर्मिता में
मेरी श्रद्धा जीत ली थी तुमने
उस दिन मेरे अनन्य सखा, उस दिन
मुझे लगा कि
मेघाच्छन्न अंधेरे आकाश को चीर
मुझे दिशा निर्देश करती हुई
अज्ञात अनंत से साथ है
एक चाँदनी-रेखा।

49. कुशलक्षेम (यात्रा की)

सबकुछ ठीक रहा
सिवा इसके कि
आगरा की बजाय
दिल्ली के डिब्बे में बैठा रहा;
जब मुझे गाड़ी बदलनी थी
मैं चाय की चुस्कियाँ ले रहा था
सही वक्त पर ग़लत बोर्ड पढ़ रहा था।
नतीजा यह रहा कि मैं उस भीड़ के साथ था
जो सिर्फ नारे लगाती है
और शोर कर लेने के बाद
जहाँ ले जाई जाती है चली जाती है।
गाड़ियाँ सही वक्त पर चलती हैं
और उन स्थानों पर पहुँचती हैं
जहाँ उन्हें ले जाया जाता है।
सवारियों के लिए कोई गाड़ी नहीं चलती।
जैसे कि
कुछ लोग जिन्हें बंगाल जाना था
मगर गाड़ी बनारस में खड़ी थी
जिस गाड़ी को मजदूरों की बस्ती में जाना था
वह दिल्ली की ओर जा रही थी
जिन्हें मुआइना करना था औद्योगिक बस्ती का
वे तीर्थ यात्रा पर निकले हुए थे
क्योंकि गार्ड और ड्राइवर हम नहीं थे।
अब गाड़ी गार्ड की मर्जी से चलती है
हमारी जरूरत के मुताबिक नहीं
यह एक दीगर बात है

(मगर सच यही है)
और वह ड्राइवर पैदा होने में अभी वक्त है
जो झूठे गार्ड के खिलाफ यात्रियों को अनुकूल दिशा में
गाड़ी ले जाये।
अब तुम पूछोगे वह ड्राइवर
कहाँ से, कब पैदा होगा?
जिस दिन तुम गार्ड बनोगे
उन ड्राइवरों की कमी नहीं होगी
जिन्हें आज की व्यवस्था विद्रोही कहती है
(जो होना कतई पाप नहीं)
यही कुछ है मेरी यात्रा की कुशलक्षेम।
तुम इसे बकवास कह सकते हो।
पर दोस्तो
फिलहाल इतना अहसास क्या कम है
कि मैं ने सही वक्त पर
ग़लत बोर्ड पढ़ें थे
और
नतीजा
जहाँ से मेरी यात्रा शुरू हुई थी
या होनी थी
आज भी वहीं हूँ।

50. प्यार

जिस दिन
ढेर सारे प्रश्नों की बौखलाहट में
तुमने कहा था
'दिल पर हाथ रखकर पूछना
कोई तो है तुम्हारी प्रेमिका ?'
जिस दिन
मेरी आस्था के खिलाफ
तुम मुझे मंदिर ले गयीं थीं
और उस भगवान के सामने
झुकने को कहा था
जिससे मेरी पैदाइशी दुश्मनी है।
शायद धीरे से कहा था तुमने
'माँग लो मुझे'।
जिस दिन तुमने कहा था
'प्यार की कोई मर्यादा नहीं'।
और वह पहला दिन
जब तुमने कहा था
'तुम्हारी भूख है प्यार'
उस दिन
तुम आवेश में थीं
या सहानुभूति के विकार का शिकार
और मैं
मैं प्रतीक्षा में हूँ
एक अनिवार्य संपूर्ण क्षण की।
तुमसे भी पहले
एक वह थी – एक यह

और एक वह
जिन्होंने मुझसे यही सारी बातें कही थीं
उस समय भी
मैं ने पूछा था दिल से
मैं चाहता था
एक निर्णायक सच
और संपूर्ण अवैज्ञानिक भूमिका वाला दिल
मुझे देता रहा
किन्हीं और आकांक्षाओं की प्रतिध्वनि।
कोई ज्यादती तो नहीं होगी।
यदि मैं कहूँ कि
हम दोनों ने (भी)
उस उम्र में स्वप्न देखे थे
जब लोग समझदार हो जाते हैं
और
समय की अनिवार्य प्रक्रिया में
हम एक दूसरे के साथ हैं
कोई किसी से
प्यार नहीं करता।

51. टूटे खिलौने

ओ मेरे अज़ीज़ दोस्त
मैं निराश नहीं हूँ।
यह सच है कि
निराशा एक छूत की बीमारी है
लेकिन
अपनी हक़ीक़त क्या कहूँ ?
तुमने देखा है कभी
ऊषा काल में अस्त होता सूरज
तुमने देखा है कभी
समझदारी को बचपन का गला घोंटते?
तुमने देखे हैं कभी
गुलाब की पौध पर उगते अंगारे
तुमने देखा है
एटमी विस्फोट से भी भयानक
किसी 'घर' का शीतयुद्ध?
तुमने कभी
बिना छत और फर्श के मकान बनाये हैं?
तुमने कभी
दोस्ती को
ज़हर बॉट-बॉट कर पीते देखा है?
तुमने कभी देखे हैं
घर के आँगन में उग आए बबूल
जो मेरे माथे पर
काँटों का ताज बन गये हैं।
उन विश्वासों का क्या करूँ
जो मेरे सेहत के नाज़ुक अंगों पर

बन चुके हैं नासूर
उन आदर्शों का क्या करूँ
जो फांसी का फंदा बन गये हैं?
ज़िन्दगी ने लौटा दिये हैं
मेरे हर निर्माण के बदले
कुछ टूटे खिलौने।
मेरे दोस्त
इन टूटे खिलौनों का मैं क्या करूँ?
मैं निराश नहीं हूँ
इतनी बड़ी लड़ाई लड़ने वाला
निराश कैसे हो सकता है?
पर मेरे अज़ीज़
हक़ीक़त के अहसास को
नज़र अंदाज़ कैसे कर दूँ
टूटे खिलौनों की सच्चाई को
कैसे झुठला दूँ?

52. अलविदा

अलविदा मेरे दोस्त
अलविदा ।
चोंको मत हमने साथ-साथ कसम खाई थी
कभी जुदा न होने की
अपनी संपूर्ण करुणा, श्रद्धा के बावजूद
हम एक दूसरे के
साथी कभी नहीं बन सके।
हमारे रास्ते में कहीं कोई तिराहा, चौराहा नहीं था
सिर्फ पड़ाव थे जिन्हें छोड़कर आगे बढ़ा जाता है
इस पड़ाव पर आकर तुम्हें अपनी मंजिल पूरी लगी
और मुझे जो रास्ता चलना है उसकी शुरूआत;
तो 'अलविदा' के सिवा और क्या कह सकता हूँ तुम्हें ?
तुम एक क़दम आगे बढ़ नहीं सकते
मैं बीच रस्ते में रुक नहीं सकता
तो 'अलविदा' ही अंतिम परिणिति है ।
मधुर होते हैं चाय के प्याले पर उभरे
किन्हीं उँगलियों के निशान,
भली लगती है
क्रोध में तमतमाये चेहरे पर
उभरती मुस्कान,
बड़ा आश्वस्त करती है व्यक्ति को
(आगे पीछे आग से घिरा हो तो भी)
किसी एक कोने में अपना अकेला मकान होने की पहचान।
तुम्हारे लिए यह सिद्धि हो सकती है मेरे लिए साधन भी नहीं ।
मैं जानता हूँ आग और पानी का रिश्ता,
मैं पहचानता हूँ

किसी मकान के बाहर भीतर की आग
क्योंकि मैंने अंधेरे के बावजूद आग लगाने वाले
कुछ हाथ देखे हैं
इसलिए मेरे लिए अनिवार्य है कि
मैं इस पड़ाव से आगे का
सही रास्ता तय करूँ
जहाँ तुम यात्रा की पूर्णाहुति मान बैठे हो ।
रास्ते का होना मुझे आश्वस्त करता है।
तुम यदि अपने अपनेपन से
मुक्त हो सके होते
तो तुम भी हमारे साथ होते ।
मैं प्रतीक्षा करूँगा
उस दिन की जब तुम भी
इस मार्ग की अनिवार्यता को पहचानोगे
कोशिश करुंगा
तुम्हारे लिए
मार्ग अधिक अनुकूल हो।
(मैं रहूँ न रहूँ)
इसलिए आज तो अलविदा मेरे दोस्त
हो सकता है
कल किसी पड़ाव पर
हम फिर एक साथ हों।

53. सही बात

अब
जब तुम्हारे दिमाग का तूफान
थम चुका है
और तुम फिर से
महसूस ने लगे होपेट का भूगोल
सही बात कही जा सकती है।
एक और नाटक पूरा हो गया
'नयी रौशनी' से लेकर
'निर्भयता' तक का पाठ पूरा हो गया।
बार-बार मत पेटी में
बारूद की जगह कागज भरोगे
तो तुम्हारे हाथों में होगा प्याज
और तुम्हारे खेतों में उगेंगे कुकुर मुत्ते।
हर मौसम में काटोगे फसलों का गणित
और उसे गिरवी रख दोगे
भविष्य के लिए
तुम्हारे सुख के लिए चंदन का टीका
बोनस से खरीदा
आतिशबाजी का सामान
ग्रहों की परिभ्रमण गति
और जांघों में छिपा ब्रह्मानंद,
जब तक नाकाफी नहीं होता
आँखों में उगा मरुस्थल
मिट नहीं सकता ।
पानी के विद्युत विभाजन से डरोगे
तो अपने आगे पीछे की खाईयाँ

कैसे भरोगे?
हाइड्रोजन की नाभिकीय विखण्डन की ताकत को
पानी से कब तक ठंडा करोगे?
शायद तुम्हें पता नहीं उन किलों की ताकत
हाइड्रोजन बम से कहीं बड़ी है
जिन्हें तुमने त्यौहार का नाम देकर बनाया है।
महलों और मंदिरों से माँगते हो
दवा की जगह रोग मुक्त होने की दुआ
तो कैसे मानूं तुम्हें स्वस्थ होने का सऊर है।
डेढ़ सदी से चीख रहा है
इतिहास का वैज्ञानिक विश्लेषण
और तुम अब भी मुर्दे पूज रहे हो।
तुम अब भी मानते हो
संसद
सभी रोगों का समाधान है।
कागज के टुकड़े को
एटम बम मानते रहोगे
तो सदियों तक
ऐसे ही महामारी सहोगे।

54. बहुत बदशक्ल हो चुका है

बहुत बदशक्ल हो चुका है
तुम्हारा भविष्य दर्शी चित्र
निरंतर फटते जा रहे परिधान पर
कब तक लगते रहेंगे पैबंद?
क्या करे कोई
तुम्हारी महानता लेकर
जिससे रोटी नहीं खरीदी जा सकती ?
बहुत दिन बिक चुके
बुद्ध, गांधी, राम और कृष्ण
कब तक इन चेकों की कीमत
पसीने से चुकानी पड़ेगी?
हम जान चुके हैं
अकेले अकेले घर बनाने की असलियत।
मेरा घर
मेरा परिवार
मेरा देश, मेरी संस्कृति
अब कतई आश्वस्त नहीं करते।
हमारा घर है वह मशीन
हमारा परिवार है वह कारखाना
हमारा देश है
हमारे शरीर के हर अंग से
निकलता पसीना।
हमारा परिवार
उसी दिन टूट गया था
जिस दिन हमारे श्रम को
संचित सुरक्षित करने के नाम

तिजोरियों का आविष्कार हो गया था।
मेरा घर
उसी दिन टूट गया था।
जब
माँ-बाप बेटे-बेटियों के बीच
मैं पैसे की बैसाखी लगाकर
खड़ा हो पाया था।
मेरी संस्कृति
दुत्कार दी गई थी
विद्याभवन से, दवा की दुकान से
मेरा देश
तब भी वैसा ही था
जब मैं उसे अपनी पीठ पर लादे था
आज भी वैसा ही है
जब मैं उसे मशीन में ठूंस कर
ठेले जा रहा हूँ।
जब भी उसे किसी मूल्यांकन की
जरूरत पड़ी
तुम्हारी दानवीरता
और हमारा त्याग
इतिहास बनते रहे।
कब तक इतिहास होते देखते रहें
तुम्हारे और अपने वर्तमान को?
तुम्हारा भविष्य आयोजन
हर बार भूत बनता रहा हो तो लाजिमी था,
हम ख़ुद भविष्य को देखें
वर्तमान को भविष्य तक ले जाएँ।

55. खेल खेल का घर

जब कभी
नन्हें बच्चों को खेलते देखता हूँ
गुड़ियों से, खिलोनों से
जी होता है कि उन्हें फटकार दूँ।
साफ-साफ कह दूँ कि
खिलौने खिलौने होते हैं।
बार-बार उनसे खेलते
खिलौनों की दुनिया का
मोह हो जाता है।
खिलौने तो टूटते ही हैं
गुड़िया गुड्डे की असली शादी
कभी नहीं होती।
न किसी गुड़िया का
राजा जैसा दुल्हा होता है
न किसी गुड्डे की
परी जैसी गुड़िया - दुल्हन।
फिर भी बार-बार
खेल की दुनिया बसाने को
जी क्यों होता है?
लोगों ने समझदार बनने के बाद
'घर-घर' खेला था
शायद इसीलिए
हमारे सपने
उनके घरों में फूल-फल रहे हैं।
और मेरे घर
वही टूटती दीवालें

फूटे खिलौने
शायद तुम्हारे घर भी।
और तुम जब भी मिले
बार-बार उसी खेल की याद दिलाते रहे
कहो कैसे हो, पूछते रहे
क्या कह दूँ तुम्हें
बिगड़े खेल के साक्षी तो तुम भी हो न?
कैसे दे दूँ तुम्हें
टूटे खिलौनों का यह उपहार?
उसी खेल में
मैंने तुम्हें हँसी देने का वायदा किया था
कैसे देखने दूँ
आँसू का अपना संसार?
तुम ले के भी क्या करोगे?
आदमी एक जानवर तो है
पर पशु- आवश्यकताओं के अलावा
उसकी और भी कुछ माँग है।
बहुत सुखी हूँ
अपनी पशु आवश्यकताओं को लेकर।
मेरे दोस्त
इतना भर कि
एक ज़िन्दगी
आदमी बनकर जी लेता
जिसमें
जरूरत की मजबूरी से नहीं
सिर्फ आदमियत से
बंधे होते हम
लेकिन इस घर की रेखाएं

एक दूसरे को काटकर
बार-बार बना देती हैं
एक जंगल।
इसी से मेरे दोस्त
तुम भी बच्चों को
'खेल - खेल का घर'
मत खेलने देना।
टूटे खिलौनों की असलियत
सपनों का मोह भंग
सबको सहन नहीं होता।
आँसू का समंदर
सहेज पाना
सबके बस की बात नहीं।

56. और दूर

और कितनी दूर होता जाएगा
हमारा आकाश?
और कितनी बार टूटेगा
हमारा विश्वास?
हमारा तुम्हारा जन्म
किसी एक अंकुर से
एक-दूसरे के लिए हुआ था
कितनी बार समझना - समझाना पड़ेगा
यह सत्य ?
यह कौन सी समझदारी है कि
जैसे-जैसे बुद्धिमान बनते जाते हैं
एक-दूसरे को पहचानने की शक्ति
क्षीण होती जाती है।
तथ्य
स्वर्ण मृग नहीं होते
कि बार-बार छलें।
यह भी कोई विकास है कि
बार-बार पीछे चलें।
हमने पहचान लिया है
जिन हक़ीक़तों को
हमने जान लिया है
जिन अंधेरों को
उन्हीं में भटकें।
रोज सुबह
एक-दूसरे से पहचान
नये सिरे से करें।

जो बीत गया
उसकी बातें करें
वर्तमान को अतीत करें
क्या यही थी हमारी पहचान की शर्त ?
रास्ते को पहचान लेने के बाद
कहीं कोई जंगल नहीं था
फिर भी क्यों बार-बार
लौट जाना पड़ता है
पिछले पड़ावों पर।
हमारे अजनबी होने का यह क्रम
और कितनी दूर तक चलता रहेगा?
हम कब तक अपनी लड़ाई
अकेले-अकेले लड़ते रहेंगे?
कब
एक-दूसरे को
एक स्वर्णिम सोच से बाँध पायेंगे?

57. तुम

नहीं जानता
तुम मेरी कमजोरी हो या ताकत
कमजोरी आदमी को बुजदिल बनाती है
जो मैं नहीं बना
ताकत आदमी को साहस देती है
जो मैं नहीं जुटा पाया
नहीं तो सारे व्यवधानों को तोड़
जीत न लेता तुम्हें?
तुम्हारे न होने का अहसास
मैं बर्दास्त नहीं कर पाता और तुम्हें
अपने पास खींच नहीं पाता
कैसी मजबूरी है कि बाँहों की ताकत
नपुंसक हो जाती है
हर बार जब भी तुम्हें
आगोश में लेना चाहा
मैं अकर्मण्य हो जाता हूँ
फिलहाल
मेरी ताकत और साधनों को देखते,
मैं जो नहीं हो सकता
उस असलियत को
मान क्यों नहीं लेता मन ?
तुम क्या हो
मेरी कमजोरी या ताकत ?

58. अच्छा होता

अच्छा होता दोस्त
यदि तुम मेरी असलियत न जानते
मेरा अहं
मुझे कोई नहीं जानता
तो न टूटता ।
यह विडम्बना तो न झेलता
कि
डॉक्टर रोग को पहचान कर भी
अपने दवा के भंडार से
एक बूँद भी न दे पाये?
मैं
काँच की भट्टी अच्छा था
तुम्हारी हवा ने
धधकते लावा में
लपटें पैदा कर
क्या किया?
क्या कभी
इंसानी संपूर्णता का
एक संपूर्ण क्षण
मुझे मिल पाएगा?

59. मैं

मैं
तुम्हारी माँ की कोख से नहीं जन्मा
तुम्हारी जाति का प्रमाण पत्र
मुझे नहीं मिला
धर्म, भाषा, रस्में
मेरा कुछ भी तो
तुम्हारा नहीं हुआ ।
फिर कैसे उम्मीद करूँ कि
तुम मुझे अपना साथी मानों?
तुम्हारे हृदय-मस्तिष्क की पीड़ा
मेरी अपनी पीड़ा है
कैसे कर पाते तुम यह विश्वास ?
सामाजिकता, संस्कार और
छद्म नैतिकता में
खण्ड-खण्ड बँटी दुनिया
तुम्हें कैसे मानने दे
कि मैं
तुम्हारा सखा, भाई हूँ!
जब-जब हमारा पेट
विद्रोह करता है
हमारे सीने में एक साथ
छटपटाहट होती है
मार्ग में अनेक घरोंदे
ढह जाते हैं।
तुम मेरे साथ
कदम मिलाकर नहीं चल पाते

झूठी सामाजिकता के भय से ।
सिर्फ यह कि
हमारा दर्द संवेदन एक है
और उससे मुक्ति के लिए
साथ-साथ
एक ही दिशा में चलना होगा
तुम स्वीकार नहीं करोगे।
मेरे नासमझ साथी
सिर्फ इतना कि
इतिहास की
सामयिक जरूरत को
तुम सिर्फ समझते भर,
तो वेदना मुक्ति का मार्ग
कुछ सरल हो सका होता।

60. राधा : कृष्ण

राधा
एक मनोभाव था सारी बृज भूमि का
कोई शरीरी परिभाषा नहीं
सारे बृज में व्याप्त भावना से श्रेष्ठ आलंबन और क्या होता
युग पुरुष कृष्ण के लिए ?
कृष्ण एक आस्था थी जन-जन की
उसे लोग अवतार कहें तो आश्चर्य क्या?
और यदि राधा-कृष्ण मंत्र सा
प्रेरणा श्रोत बन गया कई युगों की चेतना का
तो कोई अजूबा नहीं हुआ।
वस्तुत: कोई भी युग
राधा-कृष्ण के संयुक्त अस्तित्व के बिना
अपनी ऐतिहासिकता
सिद्ध ही नहीं कर पाया।
आज भी राधा और कृष्ण
महज ऐतिहासिक पात्र नहीं हैं
तभी तो
राधा के नाम से कृष्ण को
कृष्ण के नाम से राधा को
पहचाना जा सकता है।
क्योंकि राधा-कृष्ण
एक-दूसरे के पूरक हैं
दोनों युग की अनिवार्य माँग
प्रेम के प्रतीक हैं।

61. राजघाट पर

राजघाट पर एक शाम
मैं अर्पित कर रहा था अपना प्रणाम
सहसा एक स्वर
'भज कुर्सी, भज नकद नारायण'
और फिर एक आह
'हे राम'
रघुपति राघव राजाराम ।
मैं ने कहा कौन है
क्यों इतना गिरते हो
घर की बातें
बापू की समाधि पर करते हो?
आवाज़ फिर बोली
'मुझे याद है वह गोली'
मैं तुझे नहीं बताऊँगा अपना नाम
मुझे हर राम से डर लगता है
चाहे राजा का बेटा राम हो
या नाथूराम!
मैं जानता हूँ तेरा धंधा
तेरे भी खादी के थैले में होगा
किसी प्रतिष्ठान का चंदा
तू तो नाथूराम को भी लजाएगा
उसने मेरे शरीर को गोली मारी थी
तू मेरी आत्मा को गोली मार जाएगा ।
मैं ने कहा
मैं नेता नहीं, अभिनेता नहीं
कवि हूँ, विचारक हूँ

सारे युग की
चेतना का संवाहक हूँ।
आवाज़ फिर बोली
दूर हो चाटुकार
तेरी चेतना अंधी है
विचारों पर पाबंदी है
और तेरी लेखनी बंदी है
न तू कबीर है न निराला है
तू भी सुविधा के समंदर में
डूब जाने वाला है।
और वह आवाज खामोश हो गई
मेरे आँसू की गर्मी ओस हो गई
पत्थरों पर अब भी अंकित थे वे शब्द
'हे राम'
और मैं अनायास कहे जा रहा था
हाँ ! मैं हूँ नाथूराम
मैं हूँ नाथूराम
मैं हूँ नाथूराम

62. आदमी और दर्पण

तुम न समझोगे कि
मैं ने कहा था क्या?
क्योंकि
भाषा के सभी पर्याय
जो तुमने पढ़े हैं
वे हमारी चेतना के
कोष में मिलते नहीं हैं।
तुम पढ़ रहे हो
सरपट भागती ज़िन्दगी का कोष
ध्वनि से तीव्र उड़ने की
तुम्हारी ललक,
देखने देती भला कैसे
कि इन सबके लिए लाजिमी है
ठोस धरती का कहीं होना
कि जो मेरा हृदय था ।
चाहिए था तुम्हें अपना नाम
इश्तिहारों में
रंग बदलते
चमकते मादक बाजारों में।
इसलिए तुमने कभी
देखी नहीं वह चमक
जो कभी आई तुम्हारी आँख में
कि जिसको देखकर
आश्वस्त थी
आदमी होने की तुम्हारी पहचान ।
सभी रोचक विशेषणों से मुक्त

आदमी ।
किन्तु तुम अनजान थे
उस चमक से, पहचान से
क्योंकि तुमने नहीं देखा था
कभी दर्पण?
कि जिसमें उभरता था हर बार
मेरी नज़र का बिम्ब
मैं
जो तुम्हारे धूल भरे बचपन का
साक्षी था
बहकी किशोरावस्था का सखा
जवानी की महक का हमराही
और बुढ़ापे की माला ।
मैं तुम्हें
बाजारू मुहावरे नहीं दे सकता
तुम्हारी तारीफ नहीं कर सकता
तुम्हारी
नकारात्मक, छद्म उपलब्धियों पर
हँस नहीं सकता ।
वक्त की अनिवार्यता ने
मेरे हाथों में सौंप दिया है
इस युग का कड़वा मोहक सच।

63. मैं कवि नहीं हूँ

मेरे शहर के लिए
हिन्दी कविता बनारस से शुरू होती है
इलाहाबाद में मर जाती है
कानपुर आते-आते
हर बाल्मीकि रत्नाकर बन जाता है
मेरे इस भिण्ड मुरैना में
कभी तुलसी पैदा नहीं हुआ
अंधा सूरदास भी नहीं जिया
और तो और
एक भी मीरा ने ज़हर नहीं पिया।
होता तो –
मानसिंह क्यों होता
पीढ़ी दर पीढ़ी
मलखान सिंह क्यों होता?

64. तुम्हारा चित्र

मेरी भावना में
तुम्हारा चित्र सा कुछ
तुम्हारी याद की अंतिम निशानी
कि जिसको
श्वांस का मैं ने बनाया था सहारा।
लिया था माँग तुमने कल उसी को ।
न जाने आज क्यों
तुमने किया इंकार
कि जब लौटा रहा था
मैं तुम्हें वह चित्र
उठाकर ज़िन्दगी का भार ।
मैं रोया नहीं
रोने लगे तुम
मैं खोया नहीं
खोने लगे तुम
मैं 'मैं' था
पलटकर श्वांस की भी चाल
मगर 'तुम' से
कुछ और ही होने लगे तुम
हारा नहीं है दाँव
क्यों रोने लगे तुम ?
मेरे मित्र
यही संसार जीना है
इसी से, ले लो आज वापस वह चित्र
जो तुम्हारे हाथ की अंतिम निशानी
जो, मेरी शून्यता का अंतिम सहारा है ।

65. होली

शहर-शहर, गाँव-गाँव
इस बार भी होली जली।
हर बार की तरह इस बार भी
थोड़ी सी ईमानदारी
वफ़ादारी, सच्चाई
मतलब यह कि
मनुष्यपना जल गया ज्वाला में
लपटों में
होलिका मुस्कुराती है
इर्द-गिर्द
हाथ बाँधे हिरण्यकश्यप
कर रहे हैं परिक्रमा
जल रही है
सिर्फ कुछ फालतू वस्तुएं
जिन्हें हर घर से
बाहर फैंक दिया गया है
हाथ बाँधे खड़े हिरण्यकश्यप
मनुष्यता की एक भी लकड़ी को
छिटकने नहीं देते, लपटों से
धीरे-धीरे लपटें शांत हुई।
ठण्डी राख में
मैं खोजता रहा
सिर्फ राख ही राख बची थी
प्रहलाद एक भी नहीं बचा।

66. दिशाओं की तलाश में लक्ष्य

दिन दोपहर
न जाने कितने लक्ष्य
भटककर आ जाते हैं चार रस्ते पर।
वे प्रतीक्षा किया करते हैं
दिशा की,
यह भूलकर कि
जिसे वे स्वयं चल आये हैं
वह एक दिशा थी।
पिछले कई दिनों से
मैं भी उन्हीं के बीच बैठा
खोज रहा हूँ अपनी दिशा,
यह जानकर भी
कि वह नहीं आयेगी ।
वह भी
किसी लक्ष्यहीन चार रस्ते पर
खोज रही होगी अपना लक्ष्य।
कितनी आकर्षक होती है
नकारात्मक स्थितियों की खोज?
किसी का न होना ही
उसके होने का अहसास बनाए रखता है ।
न होने का बोध
इतना अस्तित्ववान है
कि उसे झुठलाया नहीं जा सकता ।
झूठा होना
झूठ जीने वाली हर श्वांस की
सच्ची ज़िन्दगी है ।

एक झूठ जीने के बाद
फिर दिशा की तलाश शुरू होती है
फिर ज़िन्दगी की तलाश शुरू होती है
इस उम्मीद में बार-बार
काँटों को टटोला जाता है
कि उनमें भी कहीं फूल होंगे ।
सिर्फ काँटे ही काँटे बचे रहते हैं
जिनसे टंगती जाती है
फूलों की तलाश
ज़िन्दगी की तलाश
तलाश ---- तलाश
दिशाहीन दिशा की तलाश

67. अनास्थाओं को जीना

बहुत दुख होता है
जब अनास्थाओं को जीना पड़ता है।
लोग कहते हैं इसीलिए
कुर्ते का बटन
सामने ही होना चाहिए
पीठ पर नहीं
दफ़्तर की मेज पर
पैर रखकर सो नहीं सकता
(फाइलों के बीच सोता ही हूँ।)
सच
मैं अपने जूते
सिर पर उठाकर नहीं चल सकता
लोगों के डर से ।
कल के उत्सव में
तुम्हारी ही सारी बात कहता रहा
पर तुमसे नहीं
यद्यपि तुम वहाँ उपस्थित थे।
तुमने मेरी बात सुनी
पर मुझसे नहीं ।
ऐसे ही कभी
भगवान को बुलाता हूँ
तो पंडित से कहना पड़ता है
या पत्थर की मूर्ति से ।
सावन के बादलों से
जब पूछता हूँ
गंगा की प्यास

किसी माँझी का
विश्वास टूट जाता है।
अमावस की रात में
जानबूझकर चाँद ढूँढता हूँ
तो न जाने
कितनी आकाशगंगायें रोती हैं।
सिर्फ सड़क समझकर
गुजर जाता हूँ वहाँ से
जहाँ मेरा घर होता है।
ऐसे ही मुझे
उन सबके साथ रहना पड़ता है
जिनसे मुझे घृणा होती है
और लोग उन्हें
मेरा दोस्त समझते हैं।
बड़ा दुख होता है
जब अपने आप को मारकर
सिर्फ मेरा नाम जीता है।
बड़ा दुख होता है जब
अनास्थाओं को जीना पड़ता है

68. किनारों से प्रतिबद्धता की असमर्थता

निरंतर प्रवाह में बहते-बहते
कभी कभी सोचता हूँ
यों हाथ-पाँव न मारूँ
किसी किनारे से बंध जाऊँ
जब भी किनारे के
किसी लता द्रुम को
मजबूत आश्रय समझकर पकड़ा
वह सड़ी हुई घास साबित हुआ।
किसी भी किनारे से बंध नहीं पाया।
तो क्या डूब जाऊँ??
नहीं, मेरा रचनाकार डूबना नहीं चाहता,
मैं इसी प्रवाह में
एक नया द्वीप सृजन करूँगा।
नहीं नहीं मैं बधूँगा नहीं
मेरे अन्दर जन्मे विद्रोह ने
कभी बँधना सीखा नहीं
नहीं तो मेरा जन्म ही न होता
किनारे के किसी बाग़ की पंक्ति में
उसी दिन खड़ा हो जाता
जब इस प्रवाह में बहा था।
कदम मिलाकर चलने वालों से
कभी पीछे रह गया हूँ, कभी आगे निकल गया हूँ।
फिर अपने आपको अकेले पाता हूँ
किसी जंगल में या किसी प्रवाह में।
शायद यही मेरी नियति है
जो मुझे जीनी है।

69. मैं, माँ और धोखेबाज़ लड़की

माँ
मेरी पैदाइश का रहस्य
तूने उस दिन क्यों नहीं बताया
जिस दिन मैं ने एक कुँआरी लड़की से प्यार किया था?
आज वह सरेआम धोखा देकर
किसी और के अंक में समाई हुई है
अपने गर्भ से पैदा करती जा रही है
साँप और बीछी भेड़िए और मगर ।
माँ
तूने मुझे उस दिन क्यों नहीं कहा था
कि तूने भी मुझे सूरज को धोखा देकर पैदा किया था?
आज मैं तुम्हारे बेटों का जन्मजात दुश्मन हूँ
उन बेटों का जो तेरे रिश्ते से मेरे भाई हैं।
माँ
मेरे अपराध करने से पहले तूने क्यों नहीं बताया था कि
इस भाई-भाई के फासले का अपराधी (जिम्मेदार) कौन है?
माँ
तूने क्यों नहीं बताया था उस धोखेबाज़ लड़की से
मुझ जैसे कर्ण पैदा होंगे ।
आज मेरे पास माँ का ढोंग रचकर
कौन से पवित्रता, ईमानदारी के
कवच-कुंडल माँगने आई हो।
मेरी सारी पवित्रता, ईमानदारी
(जो तुमने नहीं दी थी)
वर्षों पहले मैं उस लड़की को दे चुका हूँ
जिसने बदले में मुझे घृणा, धोखा, परायापन दिया ।

ले जाओ ये कवच और कुंडल
और ढक दो उन बेटों को
जिन्हें तुम अपना कहती हो।
अपराध से पैदा हुआ कर्ण
आज भी माँ की इज्जत करना जानता है ।
लेकिन माँ! एक सवाल
सिर्फ एक सवाल का उत्तर देती जाओ,
जिस दिन मैं ने अपनी सारी अर्जित पवित्रता
उस लड़की को सौंप दी थी
उस दिन तुमने क्यों नहीं कहा था
कि बदले में मुझे क्या मिलेगा?
तुम जानती थी न इसका उत्तर ।
चुप क्यों हो बोलो मैं जानता हूँ
तुम्हारे पास इसका उत्तर नहीं है
(होगा भी तो दोगी नहीं।)
मनु से लेकर गांधी तक
श्रद्धा से लेकर उस लड़की तक
किसी के पास इसका उत्तर नहीं ।
मैं जानता हूँ सुनो
युधिष्ठिर ने 'नरो वा कुंजरो वा' कब नहीं कहा?
कृष्ण ने कर्ण को कायरता से कब नहीं मरवाया ?
गांधी ने कितनों का यश
अपने माथे नहीं ओढ़ा?
मेरी गंदी बस्ती की धोबिन किस कुन्ती से अपवित्र है?
फर्क यही है न कि उसने कुंती से
चार ज्यादा पुरुषों का संभोग किया है?
उस लड़की का यही गुनाह है कि उसने मुझे धोखा दिया?
उसे भी तो तुम्हीं ने पैदा किया होगा?

आदर्शों का आदमी शैतान की तरह
स्वर्ग से हमेशा गिरता आया है
क्योंकि वे आदर्श तुम्हारी जैसी माताएँ बाँटती हैं।
इंसान ने बहुत सोचकर भगवान पत्थर का बनाया
जिससे वह कभी बदल न सके।
चिंता मत करो माँ
तुम्हारा, मेरा और उस लड़की का पाप
पत्थर बनने दो।
तुम्हारे प्रसव से जन्मा मैं मेरे प्रेम पोषित वह लड़की
आखिर पत्थर ही तो बनने थे।
गुनाह किसका था?
गुनाह उस अन्त: दृष्टि वाले धृतराष्ट्र का था
जिसके अंधे बेटों ने
तुझे राशन की दुकान से धक्के मारकर निकाला था।
गुनाह तेरा था
जिसने मंत्र शक्ति का प्रभाव जाने बिना
उसका उपयोग किया
और
कर्ण, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन पैदा करती गई।
गुनाह तेरे बेटों का था जिन्होंने द्रौपदी के सुख की ख़ातिर
दुर्योधन का अपमान किया।
गुनाह मेरा था
जिसने सूत-पुत्र की तरह शिक्षा पाई,
मेरे क्षत्रिय ख़ून को तूने ही तो ख़ून नहीं रहने दिया
और मैं परशुराम को धोखा दे आया।
गुनाह किसका नहीं था?
यह गुमराह पीढ़ी रेत की आँधियों में
बिखरनी ही थी ।

तेरा अशक्त आँचल इन बिखरे बेटों को कैसे बाँध पायेगा?
लेकिन नहीं
इतने बड़े अपराधी युग से एक सच्ची माँ पैदा होगी
एक सच्चा बेटा जन्मेगा
वह जिससे भी प्रेम करेगा
वह धोखा नहीं होगा
गुनाह नहीं होगा।

70. लोग मुझे ज़िन्दा रखना चाहते हैं

कितना अच्छा मजाक है
कि लोग
मुझे ज़िन्दा रखना चाहते हैं।
दवा की शीशियों पर
उभरी बीमारियाँ
डॉक्टर बने, कॉलेरा, टायफाइड
सन्निपात, निमोनिया
इन सबसे जूझकर मैं ने
ज्वरग्रस्त हँसी ओढ़ ली है।
लोग कहते हैं
हँसो मत
यह बुखार है
इसे महसूस करो।
दरवाजे से
एक सुन्दर सी लड़की
मुस्कुराकर लौट जाती है।
मेरे घर बैठे एक साहब कहते हैं
'मेरी वजह से लौट गई'
मैं उनसे इतना भर कहता हूँ
'जब से इस बस्ती में आया हूँ
यह ऐसे ही लौट जाती है,
मैं नहीं जानता कौन है।'
वे नाराज होकर कहते हैं
'बनता है साला'
मैं फिर ज्वरग्रस्त हँसी हँस देता हूँ
बहुत अच्छा लगता है
कोई मुझे गाली दे।

पर वे साहब
चलते-चलते कह जाते हैं,
'विश यू गुड लक'
जैसे मेरे कानों में
किसी ने जोर से कह दिया हो
ग़रीबी हटाओ, समाजवाद लाओ।
रोज सुबह
मुझसे सहानुभूति रखनेवाले आते हैं,
मैं सोचता हूँ
शक्कर का भाव बढ़ गया है
बीबी झल्लाकर कहती है
'स्टोव में केरोसिन नहीं है'
डॉक्टर ने मेरे लिए
टॉनिक लिखा है
पेट-बढ़े बच्चों के लिए
न जाने कौन सी दवा ।
बड़ी झल्लाहट है
ये ससुरा फिर मिट्टी खाएगा।
मेरे सिरहाने रखा
बीड़ी का बंडल खिलखिलाने लगा है।
फटे ब्लाउज़ से
बीबी का दूध भरा स्तन
लाल तिकोन सा बाहर निकल आया है
सोचता हूँ
मेरे घर
'फेमिली प्लानिंग'
लागू क्यों नहीं हो पा रहा।
मुन्ना कहता है
'बाबूजी, आज के अखबार में
बोनस

सवा आठ टका (प्रतिशत) हो गया है,
परन्तु बनिया
सामान उधार नहीं देगा
हरामी है साला।'
मेरी पीठ पर
पिछली हड़ताल की
लाठियाँ पिरा उठीं हैं।
बही राशन की दुकान से
तेल नहीं ला पाई
मैं नहीं जानता था
मुहल्ले के सभी लड़के
उसकी सुन्दरता की कद्र करते हैं।
दुकान वाले ने
हाथ दबाकर, इतना ही तो कहा था
'अन्दर आकर ले जाओ'
रोती है पगली।
जीभ आदतन कहे जाती है।
'कुत्ते भोंकते ही रहते हैं।'
पड़ोसी के रेडियो पर
एक नेता जोर से भाषण दे रहे हैं
'समाजवाद पचास साल में आएगा।'
मैं गिनने लगता हूँ
एक–दो–तीन– पैंतीस जी लिया
पैंतीस – पचास और?
हाँ, मैं ज़िन्दा हूँ,
पचासी तक ज़िंदा रहूँगा,
क्योंकि
लोग मुझे ज़िन्दा रखना चाहते हैं।

71. सुविधाजनक खाड़ी

तुम जिसे
एक बड़ा व्यवधान समझते हो
मेरे और तुम्हारे बीच
वह एक सुविधाजनक खाड़ी है।
तुम्हारी बस्ती में
अब भी
गोल गुंबद वाली मस्जिदें हैं,
कलश धारण किए मंदिर हैं,
ईसा की लाश लटकाए
चर्च वैसी ही खड़ी है।
एक बूढ़े ने
हमारी पाठ्य-पुस्तकों में
उन्हें भी शामिल कर दिया था,
जिनकी होली हमने जला दी है।
उस पार से
तुम आवाज लगाते हो,
तुम्हारे मंदिरों के घण्टे
चर्चों की बेल्स,
मस्जिदों की अज़ान
हमें फिर उन्हीं गुंबदों में
बंद कर देना चाहती है।
पर तुम भूल करते हो
तुम्हारे गुंबदों की आवाज
लौटकर
तुम्हारे ही कानों पर पड़ती है
और तुम मान लेते हो कि

हम उसे सुन रहे हैं।
तुम हमें
बीटल्स या हिप्पी कहकर
गुमराह बता देना चाहते हो।
अपने घर
सा–रे–ग–म– का आलाप अंतिम मानकर
भेज देते हो रविशंकर को
हमारी बस्ती में।
और तुम देखते हो कि
'दम मारो दम की ताल
और धुँये की आवारा लकीर में,
जब उनका सही मूल्यांकन होता है
तो तुम छटपटाते हो।
तुम धुँये को नकार देते हो
और
अगरबत्तियों की वही परिचित गंध
थोपना चाहते हो
हमारे आकाश पर।
पर तब तक
धुँये का आकाश
एक बहुत बड़ा सत्य बन गया होता है।
अपनी बस्ती के
योग साधना के सभी सामान
आदिमी पतवारों से सजी नावों पर
लादकर
तुम खाड़ी पार करना चाहते हो
जिसमें
तुम्हारे बेटों और

मेरे पिताओं की
एक पीढ़ी डूब चुकी है।
इस पार का किनारा
क्षणातीत ध्यान में मग्न पाकर
तुम्हारी नावें
तुम्हारे ही किनारे पर डूब जाती हैं।
सच तो यह है कि
हमारी बस्ती में
मकानों का कोई पैटर्न नहीं है।
मकान की संज्ञा
हमने अपने अर्थों में से
निकाल दी है।
एक आकाश है
जिसके बीच
हम किसी भी आकार में
सिमट जाते हैं
रोज़ सुबह वे आकार
फिर आकाश बन जाते हैं।

72. दोस्त से

अच्छा किया
उस आँधियों वाले रास्ते से तुम वापस लौट आए
जहाँ मैं तुम्हें ले जा रहा था।
कम से कम तुमने इतना तो सीखा
कि आँधियों से बचा कैसे जाता है।
दोस्त मेरी मजबूरी है
कि मैं आँधियों में तूफान खोजता हूँ।
तुम्हारे लौटने का मुझे कोई शिकवा नहीं है।
कम से कम बस्ती में एक तुम तो होगे
जो याद रखोगे कि मैं आँधियों में खो गया हूँ।
तुम इतना भी याद न रखो
तब भी मुझे अफसोस नहीं होगा।
मेरे मन में बस्ती में याद किए जाने का
विश्वास तब भी बना रहेगा ।
जंगल की सही परिभाषा जानने में तुमने भूल की
इससे क्या होता है?
जंगल से उलझकर तुम्हें सड़क पर खड़ा कर,
सही परिभाषा समझाई भी कैसे जा सकती है।
जो कुछ हुआ वह तुम्हारे लिए अवश्य अनायास था
मुझे अप्रत्याशित बिलकुल नहीं लगा ।
मैं ने इन आँधियों के जंगल में
कुछ पदचिन्ह देखे हैं
जो अकेले ही गये हैं।

73. सड़क अब भी चल रही है

चार रस्ते की चार सड़कें
जिन्हें तू पीछे छोड़ आया था
एक निश्चित दिशा बोध थीं।
चार रास्ता किसी को नहीं भटकाता।
यह दीगर बात है कि
चार रास्ता तुझे भटकाव लगा।
वस्तुत:
हर ओर जाने वाली सड़क
एक साइन बोर्ड थी।
यह जो पूरब की ओर जाती है
वहाँ एक चर्च है, और कपड़े की मिल।
दक्षिण वाली सड़क के उस कोने पर
पंसारी की दुकान।
उत्तर वाली सड़क पर
एक स्कूल या कॉलेज।
और पश्चिम वाली सड़क के बीचोंबीच
एक अवैध शराब घर।
एक सड़क को स्कूल वाली,
दूसरी को बाज़ार की,
तीसरी को चर्च रोड
और चौथी को
शराब घर की सड़क
नहीं कहा जाता क्या?
यह ठीक है कि सड़क-सडक है
और उनपर आये चिन्ह अलग।
चाहो तो उन्हें

एक नाम से पहचान सकते हो।
दिशा भ्रम, तुम्हें ही हुआ हो
ऐसी बात नहीं है।
ये जो जा रहे हैं
इनकी कोई दिशा नहीं है।
फिर भी
रोज़ सुबह मैं देखता हूँ
एक भीड़
चर्च और कारखाने की ओर जाती है
रंग बिरंगी यूनीफॉर्म में
नई पीढ़ी,
एक सड़क पर चली जाती है
फालतू, बूढ़े और बच्चों की टोली
पंसारी की दुकान पर क्यू लगाती है।
और शाम को
हर घर का कोई न कोई आदमी
एक-दूसरे की आँख बचाकर
शराब घर जाता है।
वस्तुत: इन सब
चलने वालों को छोड़कर
सड़क चली जाती है
जो अब भी चल रही है।

74. सड़क के बीच कब्र

उस दिन
सड़क के बीचोंबीच खड़ा मैं देख रहा था एक कब्र
पिछले कुछ ही दिनों में यह किसकी कब्र बन गई है?
पहले तो यह सड़क सपाट थी
उस पर मैं और मेरे जैसे न जाने कितने
सरपट दौड़ते जाते थे।
इसीलिए आज मैं तुम्हारे घर पूछने चला आया
कि यह कब्र किसकी है?
तुमने बड़ा सहज उत्तर दिया
यह कब्र तुम्हारी है
जिसे मैं ने कुछ दिन हुए यहाँ दफ़ना दिया है।
वैसे मैं तुम्हारी बात सच भी मान सकता हूँ
पर इसे कहते तुम्हारी आँख में आँसू नहीं थे।
और यदि यह कब्र मेरी है
तो मैं कौन हूँ?
हो सकता है मुझे दफनाते तुमने
अपने आप को भी दफ़ना दिया हो
और तुम्हें अपनी मौत का पता नहीं
मुझे मेरी मौत का!
तुम 'तुम' और मैं 'मैं' न होकर अपने - अपने भूत हों
इसलिए उस कब्र पर मैं रोज मर्सिया पढ़ आता हूँ
कि जान सकूँ सच क्या है?
पर वह कब्र भी
तुम्हारी और मेरी आँख के आँसू की तरह
पथरा गई है कोई जवाब नहीं देती।

75. सूरज की सीमा नहीं लौटती

झूठ सच
महज एक खेल है तुम्हारा
जिसकी कीमत
ज़िन्दगी से चुकानी होती है
किसी को।
तुम्हें लौटना नहीं था तो
उतने साहस के साथ
साफ-साफ शब्दों में
विद्रोही क्यों नहीं बने?
क्यों? क्यों? क्यों?
मैं ने कब कहा था कि
एक मोहक झूठ बोल कर
मुझे बहकाए रखना?
सच
इस केन्सरी ज़िन्दगी से
ज्यादा कड़वा नहीं होता मेरे लिए।
मरीचिका वायदों ने
दम घोंट दी है
रेगिस्तानी प्यास की।
अब या तो मैं आग लगाकर
दुनिया को जला दूँ और
उसी में खुद जल जाऊँ,
या
किसी अनकिये गुनाह के बदले
फाँसी पर लटक जाऊँ।
ज़हर पीने के बाद भी

मैं मरता नहीं हूँ
यह सच है।
मरूँगा तो कभी भी नहीं
क्योंकि
हर सूरज जल-जल कर
सैकड़ों नये सूरजों को
जन्म देता है
और वे सब
जलते हैं
क्योंकि
उनमें से किसी की
सीमा नहीं लौटती।

76. आत्मा, अमरता और ईश्वर

अमृत की बूँद का लालच
मुझे मत दो।
अमरता का कोरा भ्रम
वर्षों से पढ़ा जा रहा है।
और मैं उसे पीढ़ियों से ढोता रहा हूँ।
अमृत कहीं था तो
उन खण्डहरों के बीच किये वादों में
जिनकी वीरानी से अब भी रसधार बहती है।
आज वह कुछ नहीं तो
अमरता का अहसास धोखा है।
आत्मा? किसने देखा है उसे?
अपनी बाहों की विशालता में
मुझे समेटकर भी सड़क छोटी रह गई।
मेरे गर्भ से निकली नदी
पीड़ा प्यासी है
पहाड़ यातना बंद होती रही है गुफा-आशाओं में
मैं ढूँढता रहा था उसे, जिसे आत्मा कहते हैं।
शून्यता पतझड़ की बौखलाहट में
ढेर सारी आत्माओं की खड खड ध्वनि
झाड़ियों के नीचे एकत्र हो गई है।
और
फिर भी तुम मानते हो
कि कहीं कुछ है
जिसे ईश्वर कहते हैं।

77. सूरज की रौशनी

चलता है रे
अंधेरे उजेरे
सबकुछ चलता है।
होता पहले भी यही था
चाँद तारों से दूर
अमावस की छाया में,
युग का समाजबोध बदलता रहता है।
भाजी की लारी (ठेले) पर
दस पैसे में
खरीदा जा सकता है ईमान।
पंसारी की दुकान पर
दो आने में बिकता है
हींग और बहरोजे का भाईचारा।
कारखाने चल रहे हैं
खिड़कियों से उड़ेल रहे हैं
नये युग की नई पौध।
राजनगर की सड़कों पर दिन दहाड़े
सीता, रीटा बनकर अल्बर्ट की बाँहों में है।
दो-दो पैसों में बिक रही हैं।
दमयंती और सावित्रियां।
राम अफसोस में है
रावण की बदतमीजी पर
जरा भी कॉमन सेंस नहीं,
इतने दिन लंका में रहकर भी
सीता सीता क्यों है??
मम्मी बेबी से पूछ रही है

लिपस्टिक का कलर और
मिनी स्कर्ट की साइज़।
दशरथ बहुत ख़ुश हैं
उसके बेटों में एक भी राम नहीं हुआ
ससुरों को सबको
वनवास को जाना पड़ता।
उसने
कुंभकर्ण की पाठशाला में
उन सबका नाम लिखा दिया है।
चलता है रे
अंधेरे उजेरे सबकुछ चलता है
अब तो
सूरज की रौशनी भी
सभ्य हो गई है।

78. पिकासो की मौत पर

एक चित्रकार के सपूत
तुम क्या थे ?
पिकासो कला की चरम सीमा?
नहीं, नहीं,
यह तो अपमान होगा उस साधना का
जिसे तुम जीते रहे
तुमने कला जिई,
श्रेष्ठता को पहचाना
चित्रित किया
तुमने कभी उसे पूरा नहीं माना
जबकि तुम पूरे थे।
तुम्हारे अंतिम अधूरे चित्र में
रंग कौन भरेगा चित्रकार?
कौन होगा तुम्हारा सपूत
उत्तराधिकारी?
अपनी अनन्त कल्पना
मुझे दे देना चित्रकार शिल्पी।
मैं कौशिश करूँगा
तुम्हारी अधूरी छोड़ी तस्वीर
अपनी कलम से पूरी कर सकूँ।

79. मेरा घर, मेरा गाँव

वर्षों बाद
कच्ची दीवालों वाले अपने घर
वापस आया तो
पहली बार महसूस किया कि
माँ नहीं है।
न जाने कितने पड़ोसियों से पूछ डाला
हर प्रश्न तालों से टकराया
और जंजीर बन
हर दरवाजे पर चिपक गया है।
मेरी प्रतीक्षा
थककर ढूँढने लगी
कि उसका प्रश्न कहाँ है?
आँगन,
नहीं, यह मेरा आँगन नहीं है।
घोड़ों की टापों से रौंदा गया मैदान
जंगली सुअरों की कंद खोज, गढ्ढे
यहाँ तो,
गोबर की कोई गंध नहीं है।
मेरी पशुशाला,
ओह, खाली पड़ी होगी।
इतने वर्षों तक भूखे रहकर
सभी विद्रोह कर गए होंगे।
पर नहीं
कोने में सो रही है कबरी गाय, निर्विघ्न,
भविष्य योजना की
जुगाली कर रहा है, गबरू बैल,

भैंस उम्मीद के अनुकूल
बीन बजा रही है
महुये की पीकर
धुत्त है मेरा शेरू कुत्ता।
पिछवाड़े
पीठ खुली एक लड़की
निश्चय ही उसके स्तन भी खुले होंगे?
मैं पहचान गया
मेरी श्रद्धा बहन
बाथरूम की तलाश में बैठी है।
सामने
मेरा विश्वास अनुज
उसके स्तनों पर
कोयले से लकीरें बना रहा है।
एक तमाचा
मेरा गाल तिलमिलाकर लाल हो गया,
देखता हूँ
लड़की नहीं, पत्थर की प्रतिमा है।
तभी याद आता है
वर्षों पहले
इसे मैंने ऐसे ही छोड़ा था।
डुल्लो भाभी के पैरों के निशान
अब नहीं दिखते।
मैं उनकी आहट सुनना चाहता हूँ
(जो कभी नहीं होती थी)
ठीक याद आया
मेरी प्रतीक्षा में थककर वह
एक अत्तर वाले के साथ
शहर भाग गई थी।

घर? घर? घर?
दीवालें तो वैसी ही बनी हैं?
पूछूँ किसी से
जगत काका
अकेले बैठे चिलम पी रहे हैं।
महफ़िल उठ चुकी है
अलाव की राख ठंडा गई है
और वे
धुँये को गालियाँ दे रहे हैं
बरगद के नीचे
कौड़ियाँ
चुप फूटी पड़ी हैं।
वहाँ कोई इमारत बन गई है
लिखा है 'पाठशाला'
प्रसाद, पंत, निराला
वर्गों में कुर्सियों पर हैं
और ये मानव कुमार
पहचाने नहीं जाते।
ठेका खूब चल रहा है
(शराब की दुकान का)
मैं ने भी
अपनी खादी की टोपी भर पी ली है
अब दिख रहा है
गाँव घर कुछ नहीं बदला है
सच नहीं बदला है
मैं ------ मैं ------?
हो सकता है, मैं नहीं हूँ।

80. आज़ादी

इस मुक्त आकाश में भी
मेरा दम घुटने लगा है ।
अब सहन नहीं होती
चाटुकारी की सामुहिक भाषा
और
ग़रीबी, समाजवाद और प्रजातंत्र की
तुम्हारी परिभाषा ।
हजारों लाखों कुत्तों से
निरर्थक ही तो थी
अपनी आधी रोटी की सुरक्षा की आशा ।
गांधी
तुम्हारे अकेले आधी धोती पहनने से
इस समूचे
नंगे राष्ट्र को ढका जा सकना
एक भ्रम था ।
साँपों को सौंप देना
अहिंसा, भाईचारा और सत्य;
शायद तुम्हारी मजबूरी हो
किन्तु अनिवार्य ऐतिहासिक क्रम था
और
मगरमच्छों के हाथों
संविधान की सुरक्षा, रचना
कैसे मान लूँ बापू!
यही था तुम्हारा
रामराज्य का सपना?
जब धर्म निरपेक्षता ने

बोटी बोटी नोच डाली हो
हमारे ईश्वर को,
अहिंसा ने पाल रखे हों,
भिंडरानवाले, मानसिंह, मलखान सिंह, अजहर मसूद,
भामाशाह
बाइज्जत चला रहे हों
शराबघर, जुआघर, विश्वविद्यालय
बाँट रहे हों भीख माँगने के लायसेंस,
इस महाभारत को
धृतराष्ट्र भी देख सकता है ।
चौमासे में टपकती छत,
और रात के अंधेरे में जलते
फूस के छप्पर के धुँये में
धुँधली होती संविधान की स्याही को
दिल्ली राष्ट्राध्यक्षों के
स्वागत से ढक रही हो,
बंद मिल ने छीनी बापू की बैसाखी
इन्द्रप्रस्थ स्टेडियम में दफनाई गई हो,
पूर्व-पश्चिम में जले शोलों में
गुट निरपेक्षता जश्न मनाती हो,
तो इस आज़ादी को
आशीष देने को जी करता है
जुग जुग जिये प्रजातंत्र
जुग जुग जिये समाजवाद
आदमी किस चिड़िया का नाम है?
आज सुबह के अखबार में
मैं ने आज़ादी को देखा है
ममता को

लाज लुटाने की पूरी आज़ादी है,
अकबर को
भूखों मरने की पूरी आज़ादी है,
प्रमाण पत्रों की लाश लिये
प्रेम को ताजमहल से कूदने की
पूरी आज़ादी है
अफसर को घूस लेने की पूरी आज़ादी है
आधे साझे में ख़ून चूसने की आजादी है ।
रेफ्रिजरेटर, वीडियो, टी. वी. के
विज्ञापन वाले देश की जनता
ग़रीब है, यह सरासर झूठ है ।
काश ।
मेरे देश की
सत्तर फीसदी आबादी का भी
कोई अखबार होता ।

81. रेत के बगूले

मत चलाओ आतिशबाजीयाँ
और
मत सजाओ, फूलों से, अगरबत्तीयों से
इन रेत के बगूलों को ।
इन्हें फावड़े से खोदकर फेंक दो इतिहास के महासागर में,
मुमकिन है इनके नीचे ठोस ज़मीन हो ।
यह मत समझो, यह मुई रेत तुम्हारा क्या बिगाड़ लेगी
आँधियों के साथ
यह बनती है तुम्हारी आँख की किरकिरी,
और छीन लेती है तुम्हारी दृष्टि
यही बगूले तुम्हारी दृष्टि हीनता में बनते हैं तुम्हारी कब्र
और फिर कई पीढ़ियाँ उन्हें सजाती रहती हैं
फूलों से, अगरबत्तीयों से
एक बार कोशिश तो कर देखो
इस समूचे रेत को पलट देने की ।
संभव है वहाँ ठोस धरातल पर
हिमालय सी ऊँची,
गंगा सी सतत प्रवहमान
तुम्हारी कविता तुम्हें मिल जाए
और तुम्हारी
हजारों हजार पीढ़ियों को
रेत पूजा से मुक्ति मिल जाए ।
बाल्मीकि तो तुम बनोगे ही,
लेकिन उससे पहले
तुम्हारा भागीरथ होना लाजिमी है ।

82. तहखाने में बंद ज्ञान-विज्ञान

कल
अपनी स्मृति के दस्तावेजों की धूल झाड़ते मैं तहखाने में चला गया
वह परिचित तहखाना अब एक संग्रहालय बन गया है ।
एक कोने में निर्बोध बचपन के टूटे खिलौने वहाँ दूर
जवानी के पहचान हीन अनगिनत सपने,
और उस कोने में अर्थहीन वयस्कता की सीमाएँ ।
ये सारी खण्डित मूर्तियाँ
कभी मुझे बहुत भली लगती थीं,
लेकिन तब वे मेरी नज़र में खण्डित नहीं होती थीं ।
एक वक्त होता है जब वीर बहूरियों से मन बहलाया जा सकता है,
एक वक्त होता है जब हर गुदाज चेहरा आमंत्रित करता सा लगता है,
एक वक्त होता है जब तृष्णा के क्षितिज ढूँढे नहीं मिलते,
एक वक्त होता है जब बनाए हुए सारे घरोंदे पहचाने नहीं जाते
और
घड़ी की सुइयाँ सारे संकल्पों से बलवती हो जाती हैं ।
मेरे सारे वक्त इसी तहखाने की
खण्डित मूर्तियाँ बन चुके हैं ।
तहखाने के सारे दरवाजे बंद हैं ।
और बंद तहखानों में मेरा ज्ञान बन गया है,
दोस्तों की महफ़िल की बहस का मुद्दा
और
मेरी समझदारी का सारा विज्ञान,
लाल कपड़े में लिपटा एक नारा ।

83. साँस्कृतिक विरासत के पिरामिड

पवित्र तो मैं
तब भी नहीं था
जब रामायण गीता का पाठ करता था,
रोज मंदिर जाता था,
या घंटों माला लिए
अपने आपको और
सारे परिवेश को छला करता था ।
इंसानियत की पहचान
और इंसान के प्यार को जानने के बाद
मुझे जानवर से कुछ तो बदलना था
आखिर क्या मिला
पारिवारिक सिद्धि के लिए,
उन मोर्चों को छोड़कर
जहाँ मैं मनुष्य के लिए लड़ता था
कि
आज अपने बच्चों के सामने
चरित्र, सच्चाई और
ईमानदारी का प्रमाण पत्र देना पड़े ?
अपनी बस्ती की लड़ाई को छोड़
आर्थिक उपलब्धियों में हार लाजिमी थी
यह मैं जानता था ।
लेकिन यह मोह भंग
आत्महत्या बोध या मौत से
भी भयानक क्यों होता है?
ओ मेरे नादान बच्चों
गद्दार तो मैं हो ही गया,

इस सीमित दायरे में भी
मुझे कोई न पहचाने
यह कैसी मौत है ?
मर तो मैं उसी दिन गया था
जब इंसाफ की लड़ाई बंद कर
इन चार दीवालों में बंद हो गया था ।
साँस्कृतिक विरासत के पिरामिडों में
मुझे स्थान कभी नहीं लेना था

84. भूलों का सिलसिला

सबसे पहली भूल वह थी
कि मैं मनुष्य के घर जन्मा
दूसरी भूल यह थी
कि मेरे जनकों ने
मुझे पाठशाला भेज दिया ।
(बेटा से राजा बेटा बनने)
उसी क्रम में
महाविद्यालय, विश्वविद्यालय
पीछे छूटते गए
और डिग्रियों के
नये जंगल उगते गये
समझदार होने के लिए
जो कतई जरूरी नहीं थे ।
उन्हीं दिनों कभी
मैं सबसे भयंकर भूल कर बैठा
कि
मैं सोचने लगा ।
और फिर भूलों का
एक सिलसिला चल निकला
अग्निकुंड के समक्ष
एक औरत की वफ़ादारी का वादा किया
जबकि मेरे सामने
मानवता का असीम प्यार
बाँहें पसारे खड़ा था ।
पति धर्म के नाते
कुछ अदद बच्चे पैदा किए

(कुल और नाम चलाने को)
जबकि मुझे
जन्म ले रही मानवता का
बचपना सहेजना था ।
सहधर्मिता और सहनियतिवाले
अनंत विश्व में से
अपने लिए दो चार दोस्त चुन लिए ।
इसलिए
जब सारी बस्ती के हाथों में बंदूकें थीं
हमारे हाथों में थे
चाय के प्याले और ताश के पत्ते ।
हादसों की श्रृंखला में
एक दिन मैं ने आत्महत्या कर ली ।
लोगों ने मुझे
फूल मालाएँ पहनाई
सिंहासन पर बिठाया,
मुझे अंतरराष्ट्रीय हीरो बना दिया
और यह सिलसिला
अनवरत चलता जा रहा है ।

85. पितामह होना

पितामह होने का अर्थ है
समय संदर्भ निरपेक्ष
प्रतिज्ञाएं करना
और
किसी सिंहासन की
सुरक्षा से बंध जाना ।
पितामह, राजगुरु, आचार्य
हर सिंहासन की
जरूरत रहे हैं ।
इसी से
हर सिंहासन
इन्हें जन्म देता और पोषता रहा है ।
संभव है
युगांतराल में
वे समीचीन रहे हों ।
आज के युग के आदर्श
और समय का व्याप
भाई को भौतिक माप का विषय बन गये हैं ।
नहीं
मुझे पितामह नहीं बनना है ।
भीष्म समर्थ थे
बाण शैय्या झेलने को
और इच्छा मृत्यु वरण करने को ।
क्षण-क्षण मरनेवाला
इच्छामृत्यु पा भी कैसे सकता है ।
और अब तो
कोई अर्जुन भी नहीं है
जो मेरे सिर को
योग्य ऊँचाई दे सके ।

86. काँच के घर

पिछले कई दशकों से
लोग समूचा घर
काँच का बनाने लगे हैं ।
शरारतें
लोगों का फैशन बन गया है
इसी से
पत्थर फैंकने वालों की
आबादी खूब बढ़ गई है
दादाजी कहते थे
टूटा काँच घर में नहीं रखा जाता ।
तब कभी कभार
एकाध छोटा-सा काँच
घर में होता था
लोग उसे बदल लेते थे ।
समूचे टूटे घर
कहाँ तक बदले जाएँ ।

87. मौलिक अधिकार जिंदा है ।

विगत वर्षों में
लोगों को
शंका होने लगी थी
कि उनको
समता, स्वतंत्रता, बोलने
और जीने के अधिकार हैं ।
प्रतीक्षा ने
उनकी शंका को
धूप में चमकती
तारकोल की सड़क बना दिया था
और संविधान की स्याही
एक मज़ाक ।
तभी
न्याय संचेतना ने अंगड़ाई ली ।
धन्यवाद
माननीय न्यायमूर्ति
धन्यवाद
आज के बाद
लोगों को विश्वास रहेगा कि
न्याय जिंदा है
संविधान जिंदा है
कम से कम
मर सकने का
मौलिक अधिकार जिंदा है

88. चश्मे

आजकल
चश्मों का फैशन बड़े जोरों पर है
कुछ नज़र के लिए कुछ फैशन के नाम
लाल, हरे, नीले, केसरी
चश्मे पहने जा रहे हैं,
जरूरत से ज्यादा रौशनी से बचने के लिए ।
अब तो सूरज को भी
फोटोसन आँखों से देखने की बात है ।
धूल भरी आँधियों से सुरक्षा,
कमजोर नज़र का सहारा कभी चश्मा हुआ करता
पवित्रता, परंपरा, अस्तित्व,
प्रगति, प्रेम, जागरण
दिशा दर्शन, भविष्य दर्शन
न जाने कितने ट्रेडमार्क के
चश्मे बेचे जा रहे हैं ।
वैसे अंधेरे में कोई चश्मा काम नहीं आता
सिवाय कि हाथ-पाँव
या हाथ की छड़ी ।
नज़र संजीदा बनाने को तो
हमने बहुत कसरत की है
पर किसी न किसी रंग का
चश्मा पहनने की मजबूरी
कब तक रहेगी?

89. संदर्भ हीन

मेरे घर की
दीवालों को देखकर
अजनबीपन का अहसास
आकाश सा विस्तृत होता जा रहा है ।
कुछ वैसा ही जब मैं ने
ईश्वर के अस्तित्व और
उसकी आस्था को नकारा था ।
हालांकि तब भी उसके न होने का
कोई प्रमाण मेरे पास नहीं था
ठीक वैसे
जैसे आज भी उसके होने का
कोई प्रमाण मेरे पास नहीं है ।
मेरे पिताजी की
टोपी, लाठी और चमरौधे जूतों को
मैं ने भी तो
घर के पिछवाड़े स्थापित कर दिया था ।
चाय, टूथपेस्ट और साबुन के
ब्रांड बदलने तक
मुझे अहसास ही नहीं हुआ
कि मेरे घर की
दीवालें बदल रही हैं ।
मेरे कुर्ते - पाजामे टाँगने का स्थान
प्रतिष्ठा का प्रश्न बन गया है ।
कच्ची मिट्टी के छोटे से आँगन को
संगमरमर से ढंकते देख
मैं आहत तो हुआ था

पर तब उसे सिद्धि की स्वीकृति मान
आश्वस्त हो गया था ।
मेरे गुलमोहर और नीम कटने के साथ
मुझे 'आज' पहचान लेना चाहिए था ।
कल मेरी पुस्तकें
गीता - रामायण, कबीर, निराला
मार्क्स और गांधी
भंडार कक्ष का भाग बन गये
और उनके स्थान पर आ गए
इलेक्ट्रॉनिक खिलौने
नायलॉन के फूल
तो मुझे स्वीकारना पड़ा कि
मैं इतिहास बन गया हूँ ।
वह इतिहास जो उन्हीं संदर्भों में
अपने आपको
कभी दुहराता नहीं
लोग चाहे जितना कहें ।
तब भी एक जिज्ञासा है -
क्या हर संदर्भ हीनता इतिहास होती है?
क्या हर ईमानदार प्रयत्न
कभी न कभी
संदर्भ हीन हो जाता है?

90. मैं धर्म हूँ

जब-जब
मेरी पहचान की
जरूरत महसूस हुई
तुमने मुझे
मंदिर, मस्जिद, चर्च
गुरुद्वारे में कैद कर दिया ।
किसी ने मुझे
तलवार की नोक पर बिठाया
किसी ने एटमी धमाकों में खोजा ।
बाल्मीकि, विश्वामित्र,
बुद्ध, नानक
कबीर, तुलसी
अनेक अनेक ने
बार-बार मेरी तरफ़ इशारा किया है ।
किन्तु
अरस्तू और चाणक्य
मार्क्स और लेनिन के सिवाय
तुम्हें कुछ दिखाई नहीं देता
तो मैं क्या करूँ?
कभी तुम मुझे
गीता, रामायण, कुरान, बाइबल में
सत्ता की अंधी दौड़ में
खोजते हो
और उसके लिए
मनमोहक मुहावरे और नारे
गढ़ लेते हो

तो मैं
हँसने और
अपना सिर पीटने के सिवाय
कर भी क्या सकता हूँ?
जब तुम कौरव पांडवों में बँटे थे
मैं शासन के लिए
पादुकायें माँग रहा था ।
जब तुम
तलवार और बम बना रहे थे
मैं दिव्यास्त्रों और
देवास्त्रों के अन्याय से
लड़ने को
वनवासियों को संगठित कर रहा था ।
जब तुम
अग्रजों, अनुजों और पूर्वजों को
किलों में कैद कर रहे थे
मैं वर्षों वर्ष
किसी आदर्श के पिछे
वन वन भटक रहा था ।
जब तुम शीतयुद्धों में डूबे थे
मैं चक्र सुदर्शन धारी
कौम की सुरक्षा में
रण छोड़ कर भाग रहा था
सुदर्शन और पाशुपत की शक्ति
अपने पक्ष में जानते हुए भी
महाविनाश टालने को
मात्र पाँच गाँव माँग रहा था ।
जब तुम अपने आपको

जाति, संप्रदाय, समुदाय
की सुरक्षा में
लाम बंद कर रहे थे
मैं केवट को गले लगा रहा था
शबरी के बेर खा रहा था
या
प्यासे गधे को पानी पिला रहा था ।
जब तुम
सूटकेसों की अफरातफरी में
करोड़ों से
अपनी गिनती शुरू कर रहे थे
मैं किसी खेत में
हल चला रहा था
किसी कारखाने के पहियों को
गति दे रहा था
या
अपनी पीढ़ियों की संचित निधि
किसी राणा के चरणों में
समर्पित कर रहा था
जब तुम्हारी तंदूरी आग,
धन बल या शासन का मद
अपनी ही नारी अस्मिता को
नंगा कर रहे थे
मैं द्रोपदी के चीर में लिपटा था
या किसी
परमतावलम्बी वंदिनी
महिला के सम्मान में
'काश मेरी माँ भी इतनी सुन्दर हुई होती'

कह रहा था ।
जब तुम अपनी संतानों की
भविष्य चिंता में डूबे थे
मैं राज्य व्यवस्था को
शक्ति और स्थायित्व देकर
अपनी कुटी में लौट रहा था
या
अपने कुल जातीय
सत्ता संचित ज़हर के
शमन के लिए
यादवास्थली होने दे रहा था ।
सात द्वीपों की महासत्ता से
मात्र लाठी से लड़ रहा था ।
जब तुम विजयोल्लास मना रहे थे
मैं तुम्हारी ही
लहुलुहान सेना की सुरक्षा में
उपवास कर रहा था ।
तुम जीते या हारे
मुझे पता नहीं
लेकिन मैं कभी नहीं हारा ।
हाँ मैं धर्म हूँ!
जिसे आप ज़हर मानते हैं
और अपनी सुविधा से
ओढ़ते बिछाते हैं
जरूरत बीतते ही
समेटकर
चाहे जहाँ रख आते हैं ।

91. जंगल और समंदर

ये जो समंदर है
इसमें छोटी बड़ी मछलियाँ
एक-दूसरे से डरी हुई ।
ये जो जंगल है
जानवरों से भरा
सब, एक दूसरे को
खा जाने की फिराक में ।
लेकिन जब मैं
भोजन कर रहा होता हूँ
या आँखें खोले
सफ़र कर रहा होता हूँ
सुबह से शाम तक
मुझे
न जंगल दिखता है न समंदर ।
ये दिखते हैं
जब मैं
आँखें बन्द किए
कुछ अच्छा देखना चाहता हूँ
और अगली सुबह फिर
जंगल और समंदर भूल जाता हूँ ।

92. आखिर ग़लत क्या है?

कल उन्हें लगता था
हमारा विचार ग़लत है
जब हम कहते थे
आसेतु हिमाचल
यह एक राष्ट्रीयता का
एक देश है
और वह अति प्राचीन है
इस देश की माटी
हमारी संस्कृति है
'पुत्रोऽम् माता पृथिव्या' ।
किसी अक्रान्ता का
लादा गया विचार
न हमारी संस्कृति हो सकती है
न जीवन दृष्टि ।
वे कुछ व्यक्तियों को
(बल्कि अलग-अलग समय में सभी को)
ग़लत विचार से जुड़े
सही व्यक्ति मानते थे ।
आज जब
उनमें से कुछ
हमारी जमात से जुड़ते जाते हैं
वे बोखलाये हैं
अब उनका रोना है कि
हमने अपने विचारों की
हत्या कर ली
गोया विचार कोई

पान की गिलोरी हो
खाया और थूक दिया
विचार कोई
पालतू कुत्ता हो
जो रोटी दिखानेवाले के
पीछे-पीछे दौड़ता है ।
शायद उनके यहाँ
व्यक्ति पहले पैदा होता है
फिर उसका विचार ।
वे भूल जाते हैं
कि जिन्हें वे
ग़लत विचार से जुड़े
सही व्यक्ति मानते हैं
वे हमारे विचार सेतु की
एक-एक सुदृढ़ चट्टान हैं
प्रश्न इतना है कि
यह सेतु
लंका विजय के लिए बना है
या स्वार्थ समझौतों के लिए ।

93. आखिर कब तक

न हिन्दू होना गुनाह है न मुसलमान न ईसाई न अन्य कुछ
किन्तु ख़ुदा या गौड को
हत्याओं का निमित्त बनाना पाप है
यह और भी बड़ा पाप है कि
हम गर्व से सिर्फ कहते रहें
हम यह हैं हम वह हैं ।
सिर्फ कहने भर से कोई कुछ नहीं होता
कुछ होने के लिए कुछ ही क्यों
बहुत कुछ करना पड़ता है ।
चंदन की बगिया में आग भरी हो
केशर की क्यारी में आर. डी. एक्स. बोया गया हो,
शांति कबूतर संगीनों पर टँगे हों,
जैतून की पत्तियाँ
तानाशाही बूटों तले रौंदी गई हों
सिर्फ कहने वालों को
शर्म आनी चाहिए ।
थू ऐसी मानवीयता पर,
उदारतावाद पर, बन्धुत्व पर ।
'वसुधैव कुटुम्बकम्'
सिर्फ हम ही क्यों कहें, समझें और जियें,
जबकि हमें कीड़े, पतंगे समझा जाता हो,
लाजिमी है बुद्ध, महावीर या गांधी को
कुछ समय तक हमारे पाठों से निकाल दें ।
यह और भी महापाप है कि हम सिर्फ
राम की उदारता को देखें,
कृष्ण को लीलाधर मानें

योग पर व्याख्यान दें ।
धर्मराज बने रहने को
रीति, नीति, समाज और अपने ही आदर्शों को
अपमानित होने दें
साँपों को दूध पिलाएं
भेड़ियों बाघों को मानव बस्तियों में
स्वतंत्र घूमने दें यह जानते हुए कि
न वे 'अहिंसा परमोधर्मः' जानते हैं ।
न 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ।
कृष्ण शांति के लिए
पाँच गाँव के याचक बने थे,
राम वन-वन भटके थे,
किन्तु उन्होंने
न सुदर्शन त्यागा था, न देवास्त्र, न दिव्यास्त्र ।
अर्जुन तक को
गांडीव त्यागने की आज्ञा नहीं दी थी ।
नीतियों और नैतिकता के नाम पर
कब तक अपने आपको छलेंगे?
मैत्री के नाम
कंस, शिशुपाल और जरासंध के लिए
कब तक पुष्पहार सजायेंगे?
आखिर हमने 'पाशुपत'
किस दिन के लिए बनाया है?

94. वार्ता का दर्शन

सार्थक वार्ता से
किसे परहेज हो सकता है,
बशर्ते वह
समान धरातल,
समान विचार,
और हेतु के प्रति,
बेदाग ईमानदारी के साथ हो ।
मैं ने कब वार्ता नहीं की?
पत्नी से,
अर्थोपार्जन पर,
घर संचालन पर,
परिवार और पड़ोस पर,
पर उसके लिए,
अपनी चार दीवारी से बाहर
कोई दुनिया ही नहीं है ।
पड़ोसी से,
जो अपने स्वार्थ में,
हमारा सहयोग तो चाहता है,
पर अपने घर का
सारा कचड़ा, जूठन
मेरे दरवाज़े ठेल देना
अपना कर्तव्य समझता है ।
आसपास के गाँव वालों से,
जो मानते हैं,
सारी पगडंडी, सड़क
उर्वरा भूमि
उनके हिस्से में है

हमारे भाग में
सिर्फ काँटे ही नहीं
सारा का सारा जंगल है ।
अपने सहधर्मी, सहकर्मियों से,
जो मानते हैं,
दायित्व निर्वाह,
सिद्धान्तों और नियमों का पालन,
सिर्फ मेरे हिस्से में है,
उनके अपने सिद्धांत हैं,
यानी कि
उनके हिस्से में,
सिर्फ 'आज़ादी' है ।
देश विदेश के मित्रों से,
जिनके लिए
हम एक अति महान
देश और संस्कृति हैं
और उनकी
जायज़ - नाजायज माँगें स्वीकारना,
हमारा धर्म है ।
इसीलिए
अपनी अनुकूलता में
कोई भी
कभी भी हमें आँखें दिखाएगा
और हम
वार्ता के लिए
पलक पाँवड़े बिछाए देंगे ।
पर आर-पार के
अंतिम निर्णय लेने के
अदम्य साहस के बिना

इन वार्ताओं की सार्थकता क्या?
गुर्राने वाला
शेर हो कि सियार
सिर्फ प्रहार की
भाषा समझता है ।
जिस ध्वज का आश्रय लेकर
तुम सिंहासन तक पहुँचे हो,
उसकी अस्मिता का
सम्मान भले न रख सको,
अपमान तो न होने दो ।
क्योंकि वह शाश्वत शक्ति
कुछ या किन्हीं लोगों के
सम्मान की
मोहताज नहीं है ।
और यह भी कि
यह देश महान तब था
जब,
पुरुरवा का रथ
बादलों से ऊपर चलता था,
अर्जुन की धनुष टंकार
स्वर्ग तक गूँजती थी ।
तभी हमारा 'विश्व बंधुत्व'
सर्व स्वीकृत था
क्योंकि वह,
कृष्ण के सुदर्शन चक्र से
उद्‌भूत था
किसी विष्टिकार की
चापलूसी से नहीं ।

95. हम फिर खड़े होंगे

माँ
कहते हैं कि
तेरी सहज वक्र दृष्टि से ही
ज़लज़ले आते हैं पहाड़ फट जाते हैं
नदियाँ सूख जाती हैं ।
पर इस बार तो दृष्टि ही क्या,
तूने ऐसी करवट बदली है कि लगा
जैसे कुछ बचेगा ही नहीं
सबकुछ तेरे गर्भ में समा जाएगा ।
वास्तुशास्त्र जैसे निष्फल हो गया,
अभियंताओं का अनुभव धराशाई होता दिखा,
आधे आकाश में सपनों की सृष्टि सजानेवाले
धूल में खड़े थे,
कुछ अपने पहाड़ों के नीचे दबे थे
पता नहीं कितने मृत कितने जीवित ?
हमने पोमोई देखा है, हिरोशिमा झेला है
लातूर, कोयना, उत्तरकाशी
और इस बार कच्छ गुजरात!
माँ
स्वीकार करता हूँ कि हमारा सारा ज्ञान-विज्ञान सारा अर्जन-सर्जन
तेरे अदृश्य विधानों के सामने बहुत बौना है ।
उपग्रहों से तेरे गर्भ तक में झाँकनेवाले हम,
तू कब करवट लेगी नहीं जानते
और इसीलिए अपने अहंकार और दीनता में
हजारों लाखों पलक झपकते
तेरे गर्भ में समा जाते हैं ।

पर हम तेरे ही तो पुत्र हैं ।
तेरे हर तांडव के बाद जीवन के देवदूतों की फौज
दूसरे ही पल खड़ी हो जाती है,
व्यवस्था तंत्र अपनी भौतिकता और संचालन मर्यादाओं में
भले ही कुछ शिथिल रहा हो,
मानवीय संवेदनाओं का स्वत: सुप्त महासागर
तुरंत हिलोरें लेने लगता है,
उसे नाम कुछ भी दे दो ।
और यही सागर आश्वस्त करता है कि
मनुष्य अभी संपूर्ण कौआ और भेड़िया नहीं हुआ है
हम जिंदा हैं ।
हमारे पास हर विभीषिका से लड़ने को
सैनिक भी हैं और भामाशाह भी ।
इसीलिए
हम मिटेंगे नहीं
इस महाविनाश से भी
हम लड़ेंगे,
हम फिर खड़े होंगे ।

लेखक परिचय

कृष्णपालसिंह भदौरिया

M. : 9426028100

- 1945 में मध्यप्रदेश के भिण्ड जिले के चिलौगा गाँव में जन्म।
- शिक्षा : एम.ए. एम.एड.
- 1966 से 2001 तक शेठ सी.एल. हिन्दी उच्च माध्यमिक विद्यालय अहमदाबाद में शिक्षक-आचार्य के रूप में सेवा।
- 1957 से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ स्वयंसेवक।
- 2001 से 2010 तक विश्व संवाद केन्द्र - गुजरात (अहमदाबाद) में संपादक।
- 1994 से 2000 तक भाजपा कर्णावती महानगर, कार्यकारिणी सदस्य।
- 1995 से 2001 तक महानगर निगम अहमदाबाद की नगर प्राथमिक शिक्षण समिति का राज्य नियुक्त सदस्य।
- 2011 से विश्व हिन्दू परिषद में कार्यरत।
- 2017 से धर्म प्रसार आयाम में केन्द्रीय मंत्री, प्रचार प्रमुख तथा धर्म संवाद (मासिक) का संपादन।

प्रकाशन :-

- चांदनी के नाम (गीत संग्रह)
- नया पन्ना (काव्य संग्रह)
- तुलसी के राम
- पिछले प्रहर में (गीत संग्रह)
- पुराण : भारतीय इतिहास और संस्कृति का विश्वकोश

:: प्रकाशक ::

साहित्य सेतु अकादमी ट्रस्ट

ए-२०२, क्रिश लक्जुरिया, शाश्वत महादेव-३ के पास, केनरा बैंक के सामने, वस्त्राल, अहमदाबाद-३८२४१८.

978-81-980943-6-0